DDCE Utkal University

हिंदी (एम.ए.)

M.A. (Hindi)

COURSES OF STUDY

Certified that Syllabus & Courses of Study have been prepared According to the UGC guidelines

DDCE, Utkal University
M.A. (Hindi)

एम. ए. हिंदी

SEM - III

paper -XVII

विशेष अध्ययन : तुलसीदास

लेखक

प्रो. डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र

Certified that Syllabus & Courses of Study have been prepared According to the UGC guidelines

SEMESTER - III

Paper -XVII

(पाठ्य ग्रंथ)

तुलसीदास

इकाई -I रामचरित मानस (व्याख्या के लिए सिर्फ उत्तरकांड)

इकाई -II विनय पत्रिका - (पद - 1-20)

इकाई -III गीतावली -(पद - 1-20)

कवितावली - (बालकांड, अयोध्याकांड)

UNIT -I

रामचरित मानस

तुलसीदास : जीवनपरिचय

* रचनाएँ
* रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

1. **रामचरित मानस :**

1.1 ग्रंथ परिचय

1.2 तुलसी की भक्ति भावना : भाव पक्ष

1.3 तुलसी का सुधारक रूप

1.4 दार्शनिक विचार

1.5 कला पक्ष

1.6 अलंकार

1.7 उत्तर कांड (मूल पाठ)

1.8 अभ्यास प्रश्न

1.9 संदर्भ ग्रंथ

UNIT -I

तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास :

i)जीवन परिचय :

हिन्दी के भक्तिकाल की सगुण धारा के राम भक्त कवि हैं । 'मूल गोसाईं चरित' के आधार पर इनके जीवन की प्रमुख बातें इस प्रकार से हैं : तुलसी का जन्म सं. 1554 वि. में श्रावण शुक्ला सप्तमी को राजापुर में हुआ था ।

पंद्रह सौ चौवन विषे कालिंदी के तीर ।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी धरे सरीर ॥

इनके पिता राजापुर के राजगुरु थे । इनकी माता का नाम हुलसी था । प्रसिद्धि है कि जन्म के समय रोये नहीं, वरन् राम राम का उच्चारण किया, जिससे इनका नाम रामबोला पड़ गया । उनके वत्तीसों दांत थे । ये पांच वर्ष बालक जैसे उत्पन्न हुए थे । जन्म के तीन दिन बाद इनकी माता का देहान्त हो गया । माता ने पुत्र की रक्षा का भार अपनी दासी चुनियां को सौंप दिया था । अत: हुलसी की मृत्यु के बाद वह रामबोला को अपनी ससुराल हरिपुर ले गई । वहाँ पर उसकी मृत्यु सांप के काटने पर हो गई । वहाँ से राजापुर पिता के पास संदेश आया, पर उन्होंने बालक को अमंगलकारी जानकर वापस बुलाया ही नहीं । पांच वर्ष का बालक रामबोला द्वार-द्वार भीख मांगने लगा । अनंतानंद के शिष्य नरहर्यानन्द ने सब संस्कार करके शूकर क्षेत्र में इन्हें राम की कथा सुनाई । उन्होंने रामबोला का तुलसी नाम रखा । पांच वर्ष के बाद नरहरि उन्हें लेकर काशी आए और वहाँ शेष सनातन से मिले । शेष सनातन तुलसी की प्रतिभा पर चकित रह गए और उनके संरक्षण में उन्होंने इतिहास, पुराण और काव्य सब पढ़ डाला । शेष सनातन की मृत्यु के उपरान्त तुलसी राजापुर आए और वहाँ रामकथा कह कर अपना जीवन व्यतीत करने लगे ।

हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास के अनुसार सं. 1583 में तारपिता गाँव के ब्राहमण ने तुलसी का विवाह अपनी कन्या से कर दिया । पांच वर्ष वैवाहिक जीवन व्यतीत करने के बाद उनकी स्त्री एक बार मैके चली गई । वे स्वयं उनके पीछे ससुराल गए और उनकी चेतावनी पर वैराग्य ग्रहण किया । इस दु:ख में उनकी पत्नी की सं. 1689 में मृत्यु हो गई । तुलसी ने घर से निकल कर 15 वर्ष तक तीर्थ यात्रा और भ्रमण कर अंत में चित्रकूट में अपना निवासस्थान बनाया । वहाँ हनुमान के द्वारा राम दर्शन हुए । इसके बाद वे काशी चले गए । काशी में शिव ने दर्शन देकर इन्हें राम कथा लिखने की प्रेरणा दी । फल

स्वरूप सं. 1631 में अयोध्या आकर इन्होंने रामचरित मानस की रचना प्रारंभ की ।

रामचरित मानस की ख्याति बढ़ गई, फलत: काशी के पंडितों ने उसे द्वेषवश चुराने का प्रयत्न किया, और तुलसी ने यह प्रति काशी के जमींदार टोडर के यहाँ सुरक्षित रखवाई । काशी के पंडितों द्वारा पीड़ित होने पर सं. 1633 तक इन्होंने विनय पत्रिका लिखी । इसके बाद इन्होंने मिथिला यात्रा की । इसी समय के लगभग रामलला नहछू, पार्वती मंगल और जानकी मंगल की रचना की । सं. 1640 में दोहावली संग्रह लिखा । उन्होंने जीवन में अनेक चमत्कार दिखाए । इस बीच इन्होंने अन्य ग्रंथों की रचना की । संवत् 1680 में श्रावण तीज शनिवार को गंगा के किनारे असी घाट पर तुलसी ने शरीर छोड़ा । संवत् सोरह सौ असी असी गंग के तीर ।

श्रावण स्यामा तीज सनि, तुलसी तजे सरीर ॥

तुलसी की यह मृत्यु तिथि सर्वमान्य है , यद्यपि जन्मतिथि के बारे में मतभेद है, जार्ज ग्रियर्सन ने घटरामायण के आधार पर सं. 1589 तिथि मानी है जो डॉ. माताप्रसाद गुप्त को भी मान्य है क्योंकि यह गणना शुद्ध उतरती है, पर यह भादो सुदी 11, मंगलवार है । इस तिथि की परंपरा का कोई प्रमाण नहीं । यह तो घटरामायण की कल्पना मात्र है । अधिक मान्य तो मूल गोसाई चरित की तिथि सं. 1554 सावन शुक्ला 6 होनी चाहिए : क्योंकि इसकी परंपरा है । 'मानस मयंक' के लेखक ने भी इसे स्वीकार किया है । इस तिथि को ही तुलसी का जन्म समय समझना चाहिए ; मतभेद होने पर भी तिथि सर्वमान्य है ।

ii) रचनाएँ :

तुलसी के बारह ग्रंथ प्रामाणिक माने जाते हैं, जिनमें पांच ग्रंथ अति प्रसिद्ध हैं - रामचरित मानस, विनय पत्रिका, कवितावली, गीतावली और दोहावली । इनके अतिरिक्त सात ग्रंथ और भी हैं - पार्वती मंगल, जानकी मंगल, वैराग्य संदीपनी, कृष्णगीतावली, बरवै रामायण, रामलला नहछू, रामाज्ञा प्रश्नावली । इनमें से चार ग्रंथ इस पाठ्यक्रम में हैं जिनकी विशेष चर्चा की जाएगी । यहाँ संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है ।

iii) रचनाओं का संक्षिप्त परिचय :

रामचरित मानस- यह अवधी में रचित रामकथा पर आधृत महाकाव्य है । इसकी रचना 1574 ई. में अयोध्या में आरंभ हुई तथा इसका अंतिमभाग काशी में समाप्त हुआ । यह सात काण्डों का प्रबंध काव्य है । भारत के अधिकांश प्रांतों में तथा उत्तर भारत में इस ग्रंथ को अधिक से अधिक लोग पढ़ते हैं । वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत की तुलना में इस ग्रंथ के प्रति अधिक लोग आकर्षित हैं । इसमें लोग अपने जीवन का प्रतिबिम्ब देख पाते हैं ।

गीतावली – इसमें रामकथा संबंधी पदावली है । काण्ड क्रम से यह संकलित है । सूर सागर के अनुकरण पर इसकी रचना हुई है । गीतों में कथा की पुनरावृत्ति दिखाई पड़ती है ।

विनय पत्रिका – विनय पत्रिका में 279 पद हैं । यह राम के चरणों में भेजी जाने वाली गीतात्मक अर्जी के रूप में प्रस्तुत है । इसमें तुलसी की साधना का आदर्श, कला तथा भावनाओं का सहज सौन्दर्य -दर्शनीय है । यह रचना सर्वश्रेष्ठ आत्मनिवेदनात्मक साहित्य रूप है । इसका प्रत्येक पद भक्ति-रस से ओतप्रोत है ।

कवितावली – इसमें राम कथा संबंधी पदावली के साथ कवि के जीवन तथा युग को समझने के लिए महत्वपूर्ण प्रसंगों की अवरतारणा हुई है । महामारी, शरीर पीड़ा तथा मृत्यु से पहले का कष्ट वर्णित है । इसमें कविता -सवैया शैली में वर्णित है ।

इन चार ग्रंथों के अलावा अन्य ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

रामाज्ञा प्रश्न – सात सर्गों में यह रचना है जिसमें कुल 343 पद हैं । इसमें पूरी राम कथा प्रस्तुत की गई है । इसमें सीता की धरती -प्रवेश -कथा वर्णित है ।

रामलला नहछू – इसमें राम विवाह के अवसर का गीत है । इस में 'राम विवाह' के अवसर पर उपस्थित प्रजाजनों के हाव-भाव का सुन्दर वर्णन है । इसकी भाषा अवधी है ।

पार्वती मंगल – राम कथा संबंधी पदावलियाँ हैं । इसका रचनाकाल 1643 वि. है । समें शिवपार्वती के विवाह का क्रमवद्ध वर्णन है । अत: यह एक खण्डकाव्य है । यह मंगल काव्य या विवाह -काव्य है ।

जानकी मंगल – इसका रचनाकाल 1643 वि. है । इसमें भी राम-सीता का विवाह धारावाहिक रूप में है। वाल्मीकि रामायण के अनुकूल इसका वर्णन है । इसकी भाषा अवधी है ।

दोहावली – समय समय पर लिखे गए दोहों का संग्रह है । इसका रचना काल 1626 सं. से लेकर सं. 1680 तक माना जाता है । मुक्तक काव्य की सफलता इसमें देखी जा सकती है । यह ब्रजभाषा की एक सफल कृति है ।

बरवै रामायण – सं. 1669 इसका रचनाकाल है । यह कवि के द्वारा समय समय पर रचे गए बरवै छंदों का संग्रहमात्र है । इसमें भक्तिरस से संबंधित पद हैं । इसकी भाषा अवधी है ।

वैराग्य संदीपनी – कुल बासठ छंदों की छोटीसी रचना है । इसे मुक्त काव्य कहा जाता है । इसमें शांतरस प्रमुख है । इसमें निर्गुण और सगुण की एकता प्रतिपादित है । इसकी भाषा ब्रजावधी है ।

कृष्णगीतावली – यह पदों का संग्रह है । यह ग्रंथ सं. 1643 और 1650 के बीच में निर्धारित किया गया इसका रचनाकाल है । इसमें वात्सल्य एवं शृंगार दोनों रसों का प्राधान्य है । कवि ने 61 पदों में कृष्ण के बाल लीला का गान किया है । इसकी भाषा ब्रज है ।

श्रीरामचरित मानस

1.1 **ग्रंथ परिचय :**

यह ग्रंथ हिन्दू संस्कृति का सारभूत ग्रंथ है । इस ग्रंथ में भारतीय दृष्टि से जीवन की एक पूर्ण कल्पना प्रस्फुटित हुई है । हिन्दी का यह सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है । इसकी रचना तुलसी ने सं. 1631 वि., चैत्र शुक्ल 9, मंगलवार को प्रारंभ की थी । सात काण्डों में विभक्त यह ग्रंथ है । फिर भी कथा का विस्तार इतना है कि महाकाव्य के सर्गों से अधिक है । इसमें मात्रिक और वर्णित छन्दों का यथास्थान प्रयोग हुआ है । तुलसी ने दोहों और चौपाई छंद में मानस की रचना की है । इसमें राम का उत्तम चरित्र चित्रित है । मानस का मुख्य रस शांत है लेकिन श्रृंगार, वीर, करुण आदि सभी रसों का परिपाक अनेक स्थलों पर देखने को मिलता है । विभिन्न भावों का यह ग्रंथ विशेष भण्डार है । तुलसी अपने मनोरम वर्णन द्वारा श्रोता के मन पर अधिकार कर लेते हैं । मानस एक चरित्रप्रधान ग्रंथ है । इसमें संवादों की सजीवता, चरित्र का सूक्ष्म चित्रण, वार्तालाप की उत्कृष्टता परिलक्षित होती है ।

मासन की रचना तुलसी ने अपने युग की आध्यात्मिक समस्या के समाधान के लिए की थी । यह वह है कि ईश्वर साकार है या निराकार ? तुलसी ने यह सिद्ध किया है कि यह तर्क का विषय नहीं, अनुभव और विश्वास का विषय है । अपने विश्वास और आस्था के बल पर हम उसे इस रूप में अनुभव कर सकते हैं । जीवन का प्रमुख ध्येय उसीका साक्षात्कार और इसके लिए सुगम उपाय है भक्ति । इस ग्रंथ का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है । यह अपूर्व ग्रंथ है । विश्व साहित्य में इसकी समता करने वाला ग्रंथ दुर्लभ है । तुलसी ने रामचरित मानस के बारे में अपनी रचना में निर्देशित करते हुए कहा है -

संवत सोरह सौ इकतीसा । करउँ कथा हरिपद धरि सीसा ।
नौमी भौमवार मधुमासा । अवधपुरी यह चरित प्रकासा ॥

* * *

विमल कथा कर कीन्ह आरंभा । सुनत नहि काम मद दंभा ॥

(रा. मा. - 1-33-3-34-3)

परंतु मानस की समाप्ति कब हुई यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । मूल गुसाईं चरित के अनुसार राम-विवाह की तिथि को अगहन मास में सं. 1633 को इसकी रचना पूर्ण हुई तथा इसकी रचना में दो वर्ष, सात मास और छबीस दिन लगे थे । (मूल गुसाईं चरित -41.1)

भगवत् प्रतिभा संपन्न तुलसी जैसे कवि के लिए इतने स्वल्पकाल में इस विशाल ग्रंथ की रचना असंभव भी नहीं है ।

मानस में कवि के भक्त रूप और चिन्तक रूप अत्यंत मुखर है । बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड इसके लिए सर्वोत्तम सिद्ध होते हैं ।

विश्व साहित्य में 'मानस' को श्रेष्ठतम महाकाव्यों में गिना जाता है । कुछ लोग इसे पुराण काव्य कहते हैं ।

डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र के अनुसार - ''गोस्वामी तुलसी जी का सबसे महात्वपूर्ण ग्रंथ है जिसे सामान्यत: लोग रामायण कह दिया करते हैं । इस ग्रंथरत्न की प्रशंसा में जो भी कहा जाय थोड़ा है । क्या भाषा और क्या भाव, क्या काव्य और क्या सिद्धान्त, क्या रस परिपाक और क्या प्रबंध चातुरी, क्या साधुमत और क्या लोकमत, क्या अतीत कथा और क्या भविष्य पथप्रदर्शन जिस दृष्टि से देखिए उसी दृष्टि से यह ग्रंथ अपूर्व जान पड़ता है ।'' (तुलसी दर्शन पृ. - 17) ।

इन्द्रपाल सिंह 'इन्द' ने 'तुलसी साहित्य और साधना' ग्रंथ में कहा है कि -'' रामचरित मानस ' की अवरुद्ध जीवनी शक्ति और प्रवणता का सबसे पुष्ट प्रमाण यह है कि वह समग्र उत्तरी भारत में धर्मग्रंथ के रूप में मान्य है । उसकी धूपदीप, नैवेद्य से पूजा की जाती है । कोटि-कोटि जनता उससे नवीन शक्ति, नवीन प्राणस्फूर्त्ति और अमित आत्मतोष प्राप्त करती है तथा अपनी समस्याओं का समाधान खोजती है । उसका घर-घर पाठ होता है और विशिष्ट अवसर पर उसका अभिनय भी किया जाता है । अद्‌भुत जीवनीशक्ति और प्राणवत्ता के कारण ही इस काव्य ने विश्व की अनेक समृद्ध भाषाओं में अनूदित होने का गौरव प्राप्त किया है । विदेशी विद्वानों ने भी इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है ।

सरलता ही इस ग्रंथ की विशेषता है । एक अनपढ़ गंवार भी इसकी पंक्तियाँ सुनकर मुग्ध हो जाता है और उन्हें याद कर लेता है । लोकोत्तर आनन्द देने में यह काव्य ग्रंथ अनूठा है । शांति प्रदान करने के लिए यह अनुपम भक्ति ग्रंथ है । समाज संस्कार के लिये यह एक विशेष नीति ग्रंथ है । रामकथा प्रेमियों के लिए यह कंठहार सदृश है । तुलसी की महत्ता का प्रधान आधार यही एक ग्रंथ है जिसके गौरव के साथ उनका गौरव अभिन्न रूप से संबद्ध है ।

1.2 **तुलसी की भक्ति -भावना :**

भाव पक्ष - तुलसी रामकाव्य धारा के प्रतिनिधि कवि हैं । उन्होंने अपने समस्त काव्य ग्रंथों में राम के प्रति अनन्य भक्ति-भाव व्यक्त किया है । इसलिए तुलसी को राम का एकनिष्ठ एवं अनन्य भक्त के रूप में विवेचित किया गया है । परम अनुराग जब ईश्वर की ओर हो तब वह 'भक्ति' कहलाता है । तुलसी ने रघुवीर रामचन्द्रजी को अपना इष्टदेव माना है, भक्त अपनी भावना के अनुसार इष्टदेव चुनता है । कोई कृष्ण को तो कोई शंकर को, कोई विष्णु को तो कोई राम को । ब्रह्म चाहे निर्गुण हो या सगुण परंतु इतना तो निश्चित है कि वह सर्वव्यापी है । तुलसी ने अपने आराध्य दशरथनंदन राम को ब्रह्म का सगुण साकार रूप माना और सर्वव्यापी माना ।

''सीया राममय सब जग जानी । करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी'' ।

तुलसी ने परमात्मा के अनेक नामों में 'राम' नाम को सर्वश्रेष्ठ कहा ।

जद्यपि प्रमु के नाम अनेका । श्रुति कह अधिक एक तें एका ।

राम सकल नामन तें अधिका । होहु अखिल अघ खग गन वधिका ।

(मा. 323 -26, 27)

उन्होंने कहा कि राम के लिए कोई उपमा नहीं है । राम के समान बस, राम ही हैं ।

भक्ति : परानुरतिरीश्वरे (शाण्डिल्य भक्तिसूत्र)

अर्थात् ईश्वर में प्रकृष्ट अनुराग ही भक्ति है । प्रबल अनुराग का समर्पण परमात्मा की ओर होना चाहिए । लोग शुष्क वेदान्त ज्ञान नहीं चाहते थे । वे चाहते थे कि आलंबन और उद्दीपन विभाव प्रत्यक्ष हो । आँखों के सामने उपस्थित हो । महात्माओं ने कहा है आलंबन और उद्दीपन के जरिये भगवदअनुराग की अच्छी वृद्धि हो सकती है । परमात्मा तो अप्रत्यक्ष हैं । इसलिए वैधी भक्ति का विधान रचा है । वैधी भक्ति का प्रधान अंग है उपासक । इसमें चार बातों की आवश्यकता पड़ती है ।

1) उपासक ; 2) पूजा द्रव्य ; 3) पूजाविधि ; 4) मंत्र जाप ।

भक्ति में वैराग्य और विवेक को तुलसी ने विशेष महत्व दिया है क्योंकि भक्ति में इन दोनों की विशेष आवश्यकता है । इन्होंने नवधा भक्ति को भी महत्त्व दिया जो परंपरा से इन्हें प्राप्त थी । रागात्मिक भक्ति की ओर तुलसी का झुकाव अधिक था ।

भक्ति के लिए पाँच साधनों की आवश्यकता है -

1) मानव शरीर - शरीर के बिना भक्ति हो ही नहीं सकती -

बड़े भाग मानुष तनुपावा, सुरदुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥

2) श्रद्धा और विश्वास - तुलसी ने कहा - श्रद्धा के बिना धर्म संभव नहीं है ।

इस लिए उन्होंने श्रद्धा विश्वास रूपी हरि की वंदना की है ।

3) निश्छलता और लोक सेवा - निर्मल मन जन सो मोहिं पावा ।

जिसका मन निर्मल है वही मुझे प्राप्त कर सकता है ।

4) भक्ति में विवेक और वैराग्य की आवश्यकता है ।

जाने बिनु न होई परतीती, बिनु परतीती होई नहीं प्रीति ।

5) प्रभु प्रेम, नाम जप और सत्संग पर तुलसी ने जोर देते हुए कहा -

मिलहि न रघुपति बिनु अनुराग ।

प्रभुप्रेम की अनिवार्य आवश्यकता पर तुलसी ने जोर दिया है -

सत्संगति मुद मंगलमूला, सोई फल सिधि साधन मूला ।

'सात्विक प्रेम रूपा' - भक्ति के साथ प्रेम का गहरा संबंध है । तुलसी ने भक्ति के साथ अनुराग अर्थात् प्रेम का होना अनिवार्य माना है । अपने आराध्य के प्रति प्रेमासक्ति की भावना को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है -

कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहिं प्रिय जिमि दाम ।

तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम ॥

- जेहि के जेहि प्रति सत्य सनेहु, सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू ।

तुलसी ने हृदय पक्ष पर विशेष जोर दिया है । उन्होंने बुद्धिवाद और हृदयवाद का सुन्दर साामंजस्य किया । तुलसी ने भक्ति में अद्वैत मत को भलीभांति अपना लिया है । उन्होंने स्वीकारा कि अद्वैतवाद के द्वारा राम और रहीम की एकता स्थापित हो सकती है । सायुज्य मुक्ति इस सिद्धांत की खास चीज है । तुलसी ने कहा है कि -

हरि सेवकहि न ब्यापि अविद्या ।

प्रभु प्रेरित व्यापइ तेहि विद्या ।

हृदयवाद की पहली विशेषता है अभिलषित विषय की ओर लगन । दूसरी विशेषता है मनोबल (प्रतिकूल परिस्थितियों में अविचलता) तीसरी है वैराग्य । लोकधर्म की आवश्यकता विवेक की है और वैराग्य की भी है । वही विश्वधर्म कहा जा सकता है । वैराग्य के बिना विश्व में पक्की शांति स्थापित नहीं हो सकती । तुलसी का यह संदेश अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

दूसरी ओर यह सनातन हिन्दूधर्म का विशुद्ध रूप है ।

श्रुतिर्विभिन्न स्मृतयो विभिन्न:

नैकोमुनिर्यस्यवच: प्रमाणं

धर्मस्य तत्व, निहितं गुहायां

महाजन येन गत: पन्था: ।

भारतीय आचार्यों ने धर्म का व्यापक अर्थ लिया है । सनातन हिन्दूधर्म में भारतीय संस्कृति और मानवधर्म दोनों का मेल है । तुलसी ने अखिल संसार के जड़,चेतन सभी पदार्थों का सम्मान देते हुए कहा है -

जड़चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि ।
बंदउँ सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥

दूसरी ओर शूद्र को महत्व देते हुए कहा -

स्वपच खबर खस जमन जड़ पाँवर कोल किरात ।
राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात ॥

1.3 **तुलसी का सुधारक रूप :**

तुलसी के समय में सामाजिक विसंगतियां चल रही थीं । सामाजिक विसंगतियां, हीनावस्था से तुलसी पीड़ित थे । सामाजिक सुव्यवस्था हेतु वे वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा अत्यंत आवश्यक समझते थे । तत्कालीन समाज का चरित्र वल ह्रास हो रहा था । धार्मिक परिस्थिति की दृष्टि से देखा जाय तो उस समय उपासना और कर्म में समन्वय नहीं था । पाखंड, आडंबर, मिथ्या सगुण का नाम लेकर जनता को भ्रम में डाल कर लोग अपना स्वार्थ साधन कर रहे थे । जो तुलसी को सहन नहीं हुआ । दारिद्रय का स्वच्छंद साम्राज्य व्याप्त था । दुर्भिक्षों ने जनता को संत्रस्त कर दिया था ।

वेदानुकूल शब्दों और भावों के द्वारा ही मानव धर्म की चर्चा करके रामावतार पर पूर्ण निष्ठा प्रकट कराते हुए तुलसी ने सनातन हिन्दूधर्म के भारतीय संस्कृतिवाले अंश की पर्याप्त रक्षा की है । सांस्कृतिक आदान -प्रदान के जरिये मनुष्य समाज पर प्रभाव डाला जा सकता है । उन्होंने मनुष्य के मन में 'राम' भक्ति की गंगा बहाकर पीड़ित, संत्रस्त जातिपांति भेदभाव की संकीर्णता से ग्रस्त मानव समाज के कल्याण के लिए परंपरा से रामायण जैसी अमृत संजीवनी कथा सागर का आश्रय लिया और परहित के समान दूसरा कोई धर्म नहीं है, बताया । उन्होंने राम कथा का आश्रय लेकर जीवन जीने की कला सिखाना चाहा ।

'तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे । उन्होंने स्वान्त:सुखाय राम भक्ति के उद्‌गार व्यक्त किए थे जो भावना के तीव्र उद्रेक के कारण स्वत: ही काव्य बन गए ।''

(तुलसी साहित्य और साधना -पृ.-21)

उन्होंने परंपरा को जितना महत्व दिया था उतना ही समसामयिक समय को । उन्होंने युगीन संदर्भों को रामकथा से जोड़कर कहना चाहा कि काव्य युग से असंपृक्त नहीं है । 'सियाराममय सब जग

जानी' की अनुभूति से सरावोर होने वाला जगत की उपेक्षा कैसे कर सकता था ? उन्होंने लोकमत को महत्व दिया । 'प्राकृतजन गुनगान' कह कर उन्होंने वाणी की आराधना करते हुए कहा 'सुरसरि सम सब कहँहित होई' । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि आत्मकेंद्रित कैसे हो सकता था । उन्हें एक विशाल जनसमाज की चिंता बनी रही । उन्होंने स्वान्त:सुखाय को लोकसुखाय माना । परपीड़ा से उनका हृदय द्रवित हुआ है । इसी से ही भक्ति का स्रोत निकला है । सामाजिक दुरावस्था से ये काफी चिंतित थे । जिनका विवेचन करना उनके लिए काम्य हो गया था ।

तुलसी के समय देश की राजनीतिक परिस्थिति सुधरी हुई नहीं थी । जनता मुसलमान शासकों द्वारा पीड़ित थी । हिन्दुओं पर 'जजिया' कर तो लगाया गया था । साथ ही अन्य कर भी उन्हें देना पड़ रहा था । अन्य कर भार से हिन्दूजनता का शोषण होता था । तुलसी इस व्यवस्था को देखकर पीड़ित थे और राजाओं का आदर्श क्या होना चाहिए उन्होंने अपनी रचना में संकेत करते हुए कहा है -

''बरसत हरसत लोग सब करषत लखै न कोइ ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानु सो होइ ॥ (दो. 708)

अपनी कुचालों से उस समय के शासकों ने नीति, विश्वास, प्रेम, मर्यादा आदि को जैसे अपने शब्दकोष से ही निकाल दिया था । उनमें स्वार्थ एवं भौतिक सुखों की लिप्सा अनुदिन वृद्धि पा रही थी । प्रजा के प्रति शासकों की अनुदारता और कठोरता का वर्णन करते हुए तुलसी ने कहा है -

काल कराल, नृपाल कृपाल न, राज समाज बड़ो छली है ॥
(कवितावली - 6-85)

रावण के अत्याचारों के जरिये उस समय के शासकों द्वारा प्रजाओं का जो अत्याचार हो रहा था उस का सुन्दर वर्णन तुलसी ने किया है -

करहि उपद्रव असुर निकाया, नाना रूप धरहि करि काया ॥

* * *

तुलसी के समय में दारिद्रय का साम्राज्य व्याप्त था । तत्कालीन दुर्भिक्षों ने जनता को और भी संत्रस्त कर दिया था । जिसका कवितावली में अनेक छंदों में वर्णन किया गया है ।

समाज की विशृंखला, अनैतिकता और हीनावस्था में तुलसी का हृदय अत्यंत पीड़ित था । वे समाज की उत्तम व्यवस्था हेतु वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा अत्यंत आवश्यक समझते थे । जो उस समय धर्म के प्रतिष्ठापक थे वे लोभ लालच में लीन हो गए थे ।

कलि का नाम लेकर उन्होंने उस समय की सामाजिक स्थिति का जो जीवन्त वर्णन किया है वह अत्यंत मर्मभेदी है । यह अंश काफी हद तक 'भागवत ग्रंथ' से प्रभावित है । उस समय चरित्र बल का ह्रास हो रहा था । मिथ्या दंभ में लीन संत इस ओर ध्यान नहीं दे रहे थे । सदाचार, दान, दया, विवेक

आदि सद्गुणों का लोगों ने परित्याग कर दिया था । इस नैतिक पतन को देखकर तुलसी के हृदय ने व्यथा भरी वाणी प्रदान की है ।

तुलसी के समय में ज्ञान, उपासना और कर्म में समन्वय नहीं रहने के कारण धार्मिक दृष्टि से विघटन दिखाई देने लगा था । ज्ञान का उपदेश देने वाले हठयोगी सिद्धों और तांत्रिकों ने अपनी अद्भुत क्रिया द्वारा जनता को पथ-भ्रष्ट कर दिया था । आडंबर तथा मिथ्या प्रदर्शनों द्वारा धर्म का मूल आधार हिल गया था । इन सारी परिस्थितियों को देखकर तुलसी का हृदय अत्यंत क्षोभग्रस्त था । तुलसी कहते हैं -

करम उपासना कुबासना बिनारयो ग्यानु,
बचन, विराग बेष जगत हरो-सो है ।
गोरख जगायो जोगु भगति भगयो लोगु,
निगम नियोग तें सों केलि ही छरो सो है ॥ (क. 7/84)

उस समय धार्मिक धाराओं में मतभेद था । शैव और वैष्णव परस्पर द्रोह रखते थे । जिसकी ओर तुलसी का ध्यान गया और उन्होंने राम को शिव का तथा शिव को राम का भक्त बता कर समन्वय स्थापित करने का सफल प्रयास किया । रोग तथा दुष्काल को देखकर तुलसी का हृदय दुखित हुआ और जनता को इससे मुक्ति दिलाने के लिए उन्होंने राम, शंकर और हनुमान से प्रार्थना की है । एक सच्चा राम भक्त होने के कारण तुलसी ने समयानुकूल समाज को सुधारने का सयत्न प्रयास किया । तुलसी अपने समय के बहुत बड़े समाज सुधारक थे और अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने जो समन्वय की विराट चेष्टा की वह सराहनीय है और अपने आप में अनोखी है ।

1.4 **दार्शनिक विचार :**

तुलसी अपने समय के सर्वश्रेष्ठ भक्त कवि हैं । वे विशिष्टाद्वैतवादी कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं । उन्होंने अपने काव्य में निर्गुण और सगुण में समन्वय स्थापित करके अद्वैतवाद को भी समर्थन किया ।

तुलसी ने कहा -''ईश्वर अंश जीव अविनासी' । उन्होंने सेव्य सेवक भाव की भक्ति से मुक्ति के मार्ग को प्रशस्त किया । तुलसी ने भी जगत को भ्रमात्मक माना । उन्होंने कहा कि जीव और ईश्वर के बीच माया वाधक है । इससे मनुष्य को सचेत रहना चाहिए । क्योंकि समग्र संसार में माया व्याप्त है और जीवों को वह भ्रमित करती रहती है । कुछ लोग विशिष्टाद्वैतवादी और कुछ लोग अद्वैतवादी कहते हैं । यह स्वाभाविक है क्योंकि उन्होंने अपने ग्रंथ में अनेक स्थलों में दोनों का वर्णन किया है । माया के बारे में उन्होंने कहा है -

जैसे व्यापि रहे संसार महु माया कटक प्रचंड ॥

सो मायाबस परेउ गोसाईं''आदि ।

इस प्रकार वे शंकराचार्य के अद्वैतवाद से प्रभावित होने पर भी रामानन्द की चिंतन परंपरा में विशिष्टाद्वैतवाद से भी प्रभावित थे ।

1.5 **कलापक्ष :**

काव्य कला की दृष्टि से तुलसी एक आदर्श कवि हैं । अनुभूतियों की सशक्त अभिव्यक्ति देने में तुलसी अद्वितीय हैं । उनकी सर्जनात्मकता अत्यंत प्रतिभापूर्ण है । अवधी और बज्रभाषा दोनों के प्रयोग में कवि सिद्धहस्त थे । प्राचीन काव्य शैली को उन्होंने अपनाया है । उनकी प्रबंध पटुता तथा रचना कुशलता सराहनीय है । उन्होंने चलती आ रही छंद पद्धतियों को अपना कर अपनी प्रतिभा के बल पर उनका कुशलता के साथ अपने काव्यों में प्रयोग किया जो छंद अत्यंत लोकप्रचलित थे । जैसे सबैया, द्दप्पय, दोहा, चौपाई, कवित्त, बरबै आदि छंदों को उन्होंने अपनाया और उनका अपने काव्यों में यथा स्थान प्रयोग भी किया । प्रबंध काव्य परंपरा तथा मुक्तक काव्य परंपरा को उन्होंने सम्मान दिया । विनय-पत्रिका भक्ति का अखंड सागर है तो श्रीरामचरित मानस ज्ञान और भक्ति का अनुपम सेतु । लभगम सभी रसों का परिपाक उनके काव्य में सफलता के साथ हुआ है । राम की कथा को ही उन्होंने अपने काव्यों का उपजीव्य बनाया और समग्र कथा के माध्यम से सारी बातें समेटने की कोशिश की । तुलसी इस दृष्टि से भक्तिकाल की सगुणधारा में सर्वश्रेष्ठ कवि का आसन अलंकृत करते हैं ।

भाषा की दृष्टि से देखा जाय तो वे अकेले ऐसे रचनाकार हैं - जिन्होंने अवधी और ब्रज्र दोनों भाषाओं पर समान अधिकार प्राप्त किया । संस्कृत भाषा के प्रति उन्होंने गभीर श्रद्धा प्रकट की और कालिदासीय परंपरा को सम्मान देते हुए संस्कृत में रचना की और अपने पांडित्य का भी प्रदर्शन किया । चाहते तो संस्कृत में भी लिख सकते थे लेकिन उन्होंने लोकभाषा को महत्व देना चाहा जो उस समय की जनता की मांग थी । सहज , सरल और बोधभम्य बना कर प्रवहमान जल-समान भाषा बनाने की कोशिश की और सफल भी रहे । उन्होंने सभी भाषाओं से उपादान लेकर अपनी वाणी को समृद्ध बानाने की चेष्टा की ।

छंद की दृष्टि से उनको हम जितना महत्त्व देते हैं ; अलंकार की दृष्टि से भी उतना महत्त्व देते हैं ।

1.6 **अलंकार :**

शब्दालंकार और अर्थालंकार के प्रयोग में वे सफल रहे हैं । लेकिन उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का उन्होंने अपने काव्य में सफलतापूर्वक प्रयोग किया है । तुलसी शास्त्र परंपरा के साथ लोकपरंपरा को अधिक महत्व देते थे । जिसके कारण उनकी प्रतिभा आज भी अमलिन है ।

1.7 श्रीरामचरित मानस

(उत्तर काण्ड)

श्लो. - केकीकंठाभनीलं सुर बरबिलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजननयनं सर्वदा सुसन्नम् ।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बंधुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुबरमनिशं पुष्पकारूढराममम् ॥
कोशलेन्द्रपदकंजमंजुलौ कोमलाब्ज महेशवंदितौ
जानकीकरसरोजललितौ चिंतकस्य मनभृंगसंगिनौ ॥
कुंदइंदुदरगौरसुंदरं अंबिकापतिमभीष्टसिद्धिद्रम् ।
कारुणीक कलकंजलोचनं नौमिं शंकरमनंगमोचनम् ॥

दो. - रहा एक दिन अबधि कर अति आरत पुर लोग ।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृसतनु राम बियोग ॥
सगुन होहिं सुन्दर सकल मन प्रसन्न सब केर ।
प्रभु आगबन जनाव जनु नागर रम्य चहुँ फेर ॥
कौसल्यादि मातु सब मन अनंद अस होइ ।
आएउ प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहत अब कोइ ॥
भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार ।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार ॥

रहेउ एक दिन अवधि अधारा । समुझत मन दुख भएउ अपारा ॥
कारन कबन नाथ नहिं आएउ । जानि कुटिल किधौं मोहिं बिसराएउ ॥
अहह धन्य लछिमन बड़भागी । राम पदारबिंदु अनुरागी ॥
कपटी कूटिल मोहि प्रभु चीन्हा । ता तें नाथ संग नहिं लीन्हा ॥
जौ करनी समुझै प्रभु मोरी । नहिं निस्तार कलप सत कोरी ॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ । दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ ॥
मोरें जिअँ भरोस दृढ़ सोई । मिलिहहिं रामु सगुन सुभ होई ॥

बीते अवधि रहहिं जौ प्राना । अधम कवन जग मोहि समाना ॥

दों. - राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत ।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गएउ जनु पोत ॥
बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात ।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात ॥१॥

देखत हनूमान अति हरषेउ । पुलक गात लोचन जलु बरषेउ ॥
मन महुँ बहुत भाँति सुख मानी । बोलेउ स्रवन सुधा सम बानी ॥
जासु बिरह सोचहु दिनु राती । रटहु निरंतर गुन गन पाँती ॥
रघुकुलतिलक सो जन सुखदाता । आएउ कुसल देव मुनि त्राता ॥
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत । सीता अनुज सहित पुर आवत ॥
सुनत बचन बिसरे सब दूखा । तृषावंत जिमि पाइ पियूषा ॥
को तुम्ह तात कहाँ तें आए । मोहि परम प्रिय बचन सुनाए ॥
मारुतसुत मैं कपि हनुमाना । नाम मोर सुनु कृपानिधाना ॥
दीनबंधु रघुपति कर किंकर । सुनत भरत मेंटेउ उठि सादर ॥
मिलत प्रेमु नहिं हृदयँ समाता । नयन स्रवत जल पुलकित गाता ॥
कपि तव दरस सकल दुख बीते । मिले आजु मोहि रामु पिरीते ॥
बार बार बूझी कुसलाता । तो कहुँ देउँ काह सुनु भ्राता ॥
यह संदेस उरिन मैं तोही ।अब प्रभु चरित सुनाबहु मोही ॥
तब हनुमंत नाइ पद माथा । कहे सकल रघुपति गुन गाथा ॥
कहु कपि कबहुँ कृपालु गुसाईं । सुमिरहिं मोहि दास की नाईं ॥

छ.- निज दास ज्यों रघुवंस भूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्‌यौ ।
सुन भरत बचन बिनीत अति कपि पुलकि तन चरनन्हि पर्‌यौ ॥
रघुबीर निज मुख गुन गन कहत अग जग नाथ जो ।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंधु सो ॥

दो. - राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात ।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरष न हृदयँ समात ॥

सो. - भरत चरन सिरु नाइ तुरित गएउ कपि राम पहिं ।
कही कुसल सब जाइ हरिष चलेउ प्रभु जान चढ़ि ॥२॥

हरषि भरत कोसलपुर आए । समाचार सब गुरहिं सुनाए ॥
पुनि मंदिर महँ बात जनाई । आबत नगर कुसल रघुराई ॥
सुनत सकल जननी उठि धाईं । कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं ॥
समाचार पुरबासिन्ह पाए । नर अरु नारि हरषि सब धाए ॥
दधि दुर्बा रोचन फल फूला । नव तुलसीदल मंगल मूला ॥
भरि भरि हेम थार भामिनी । भावत चलिं सिंधुगामिनी ॥
जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं । बाल वृद्ध कहुँ संग न लाबहिं ॥
एक एकन्ह कहुँ बूझहिं भाई । तुम्ह देखे दयाल रघुराई ॥
अवधपुरी प्रभु आवत जानी । भई सकल सोभा कै खानी ॥
बहइ सुहावन त्रिविध समीरा । भइ सरजू अति निर्मल नीरा ॥

दो. - हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत ।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपा निकेत ॥
बहुतक चढ़ी अटारिन्ह निरखहिं गगन बिमान ।
देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंल गान ॥
राका ससि रघुपति पुर । सिंधु देखि हरषान ।
बढ़ेउ कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान ॥३॥

इहाँ भानुकूल कमल दिबाकर । कपिन्ह देखावत नगरु मनोहर ॥
सुनु कपीस अंगद लंकेसा । पावन पुरी रुचिर यह देसा ॥
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना । बेद पुरान बिदित जग जाना ॥
अवध सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ । यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ॥
जन्मभूमि मम पुरी सुहाबनि । उत्तर दिसि बह सरयू पाबनि ॥
जा मज्जन तें बिनहिं प्रयासा । मम समीप नर पाबहिं बासा ॥
अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी । मम धामदा पुरी सुखरासी ॥
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी । धन्य अवध जो राम बखानी ॥

दो. - आवत देखि प्रभु लोग सब कृपासिंधु भगबान ।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान ॥
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहि जाहु ।
प्रेरित राम चलेउ सो हरष बिरह अति ताहु ॥४॥

आए भरत संग सब लोगा । कृस तन श्री रघुबीर बियोगा ॥
बामदेव बसिष्ठ मुनिनायक । देखे प्रभु महि धरि धनु सायक ॥
धाइ धरे गुर चरन सरोरुह । अनुज सहित अति पुलक तनोरुह ॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया । हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया ॥
सकल द्विजन्ह मिलि नाएउ माथा । धरम धुरंधर रघुकुल नाथा ॥
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज । नमत जिन्हहि सुर संकर अज ॥
परे भूमि नहिं उठत उठाए । बर करि कृपासिंधु उर लाए ॥
स्यामल गात रोम भर ठाढ़े । नव राजीव नयन जल बाढ़े ॥

छं. - राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकाबलि बनी ।
अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुवन धनी ॥
प्रभु मिलत अनुजहि सो मो पहिं जाति नहिं उपमा कही ।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही ॥
बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि वचन बेगि न आवईं ।
सुनु सिबा सो सुख वचन मन तें भिन्न जान जो पावईं ॥
अब कुशल कोसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो ।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो ॥

दो. - पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदय लगाइ ।
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ ॥५॥

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे । दुसह विरह संभव दुख मेटे ॥
सीता चरन भरत सिरु नावा । अनुज समेत परम सुख पावा ॥
प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी । जनित बियोग बिपति सब नासी ॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी । कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी ॥
अमित रूप प्रगटे तेहिं काला । जथाजोग मिले सबहि कृपाला ॥

कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी । किए सकल नर नारि बिसोकी ॥
छन महँ सबहिं मिले भगवाना । उमा मरम यह काहु न जाना ॥
येहि बिधि सबहि सुखी करि रामा । आगे चले सील गुन धामा ॥
कौसल्यादि मातु सब धाईं । निरखि बच्छ जनु धेनु लबाईं ॥

छं.. - जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परबस गईं ।
दिन अंतपुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं ॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहु बिधि कहे ॥
गइ विषम विपति वियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे ॥

दो. - भेंटेउ तनय सुमित्रा रामचरन रति जानि ।
रामहि मिलत कैकइ हृदयँ बहुत सकुचानि ॥
लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिस पाइ ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोभ न जाइ ॥६॥

सासुन्ह सबनि मिली बैदेही । चरनन्हि लागि हरसु अति तेही ॥
देहिं असीस बूझि कुसलाता । होउ अचल तुम्हार अहिबाता ॥
सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं । मंगल जानि नयन जल रोकहिं ॥
कनक थार आरती उतारहिं । बार बार प्रभु गात निहारहिं ॥
नाना भाँति निछाबर करहीं । परमानन्द हरष उर भरहीं ॥
कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि । चितवत कृपासिंधु रनधीरहि ॥
हृदयँ बिचारति बारहि बारा । कवन भाँति लंकापति मारा ॥
अति सुकुमार जुगल मम बारे । निसिचर सुभट महा बल भारे ॥

दो. - लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकति मातु ।
परमानन्द मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु ॥७॥

लंकापति कपीस नल नीला । जामवंत अंगद सुभ सीला ॥
हनुमदादि सब बानर बीरा । धरे मनोहर मनुज सरीरा ॥
भरत सनेहु सील ब्रत नेमा । सादर सब बरनहि अति प्रेमा ॥
देखि नगर बासिन्ह कैं रीती । सकल सराहहिं प्रभुपद प्रीती ॥
पुनि रघुपति सब सखा बोलाए । मुनि पद लागहु सकल सिखाए ॥

गुर बसिष्ठ कुलपूज्य हमारे । इन्हकी कृपा दनुज रन मारे ॥
ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे । भए समर सागर कहुँ बेरे ॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे । भरतहुँ तें मोहि अधिक पिआरे ॥

दो. - कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नाएउ माथ ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ ॥
सुमन बृष्टि नभ संकुल भवन चले सुखकंद ।
चढ़ी अटारिन्ह देखहि नगर नारि नर बृंद ॥८॥

कंचन - कलस बिचित्र सँवारे । सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे ॥
बंदनिवार पताका केतू । सबन्हि बनाए मंगल हेतु ॥
बीथीं सकल सुगंध सिंचाई । गजमनि रचि बहु चौक पुराई ॥
नाना भाँति सुमंगल साजे । हरषि नगर निसान बहु बाजे ॥
जहँ तहँ नारि निछावर करहीं । देहिं असीस हरष उर भरहीं ॥
कंचन थार आरती नाना । जुबती सजें करहिं सुभ गाना ॥
करहिं आरती आरतिहर कें । रघुकुल कमल बिपिन दिनकर कें ॥
पुर शोभा संपति कल्याना । निगम सेष सारदा बखाना ॥
तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं । उमा तासु गुन नर किमि कहहीं ॥

दो. - नारि कुमुदिनी अबध सर रघुपति बिरह दिनेस ।
अस्त भए बिगसत भईं निरखि राम राकेस ॥
होहिं सगुन सुभ बिबिध बिधि बाजहिं गगन निसान ।
पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान ॥९॥

प्रभु जानी कैकई लजानी । प्रथम तासु गृह गए भवानी ॥
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा । पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा ॥
कृपासिंधु तब मंदिर गए । पुर नर नारि सुखी सब भए ॥
गुर बसिष्ठ द्विज लिए बुलाई । आज सुघरी सुदिन सुभदाई ॥
सब द्विज देहु हरषि अनुसासन । रामचन्द्र बैठहिं सिंघासन ॥
मुनि बसिष्ठ के बचन सुहाए । सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए ॥
कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका । जग अभिराम राम अभिषेका ॥

अब मुनिवर बिलंब नहिं कीजे । महाराज कहुँ तिलक करीजे ॥

दो. - तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ सिर नाइ ।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ ॥
जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रव्य मंगाई ।
हरष समेत बसिष्ठ पद पुनि सिरु नाएउ आइ ॥१०॥

अवधपुरी अति रुचिर बनाई । देवन्ह सुमन बृष्टि झरि लाई ॥
राम कहा सेवकन्ह बोलाई । प्रथम सखन्ह अन्हबावहु जाई ॥
सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए । सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए ॥
पुनि करुनानिधि भरत हँकारे । निज कर राम जटा निरुआरे ॥
अन्हवाए प्रभु तीनिउँ भाई । भगत बछल कृपाल रघुराई ॥
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई । सेष कोटि सत सकहिं न गाई ॥
पुनि निज जटा राम बिबराए । गुर अनुसासन माँगि नहाए ॥
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे । अंग अनंग कोटि छबि लाजै ॥

दो. - सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जनु तुरत कराइ ।
दिव्य बसन बर भूषन अंग अंग सजे बनाइ ॥
राम बाम दिसि सोभित रमा रूप गुन खानि ।
देखि मातु सब हरषी जन्म सुफल निज जानि ॥
सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिब मुनि बृंद ।
चढ़ि-बिमान आए सब सुर देखन सुखकंद ॥११॥

प्रभु बिलोकि मुनि अनुरागा । तुरत दिव्य सिंघासनु माँगा ॥
रबि सब तेज सो बरनि न जाई । बैठे रामु द्विजन्ह सिर नाई ॥
जनकसुता समेत रघुराई । पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई ॥
बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे । नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे ॥
प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा । पुनि सब बिप्रन्ह आयेसु दीन्हा ॥
सुत बिलोकि हरषीं महतारी । बार बार आरती उतारी ॥
बिप्रन्ह दान बिबिध बिधि दीन्हे । जाचक सकल अजाचक कीन्हे ॥
सिंघासन पर त्रिभुवन साईं । देखि सुरन्ह दुंदभी बजाई ॥

छं. - नभ दुंदुभी बाजहिं बिपुल गंधर्ब किन्नर गावही ।
नाचहिं अपछरा बृंद परमानन्द सुर मुनि पाबहीं ॥
भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते ।
गहे छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते ॥
श्री सहित दिनकर बंसभूषन काम बहु छबि सोहई ।
नव अंबुधर बर गात अंबर पीत मुनि मन मोहई ॥
मुकुटांगदादि बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे ॥
दो. - बहु सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस ।
बरनइ सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस ॥
भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम ।
बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्रीराम ॥
प्रभु सर्वज्ञ कीन्ह अति आदर कृपानिधान
लखेउ न काहू मरम यह लगे करन गुन गान ॥१२॥
छं. - जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने ।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुजबल हने ॥
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे ।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे ॥
तव बिषम मायाबस सुरासर नाग नर अग जग हरे ।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुनन्हि भरे ॥
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिध दुख ते निर्बहे ।
भव खेद छेदनदक्ष हम कहुँ रक्ष राम नमामहे ॥
जे ज्ञान मान बिमत्त तब भवहरनि भक्ति न आदरी ।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ॥
बिस्वास कर सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे ।
जपि नाम तब बिनु स्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे ॥
जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी ।
नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी ॥

ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे ।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे ॥
अब्यक्त मूल मनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने ।
षट कंघ साखा पंचबीस अनेक पर्न सुमन घने ॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आस्रित रहे ।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे ॥
जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं ।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तब सगुन जसु निज गावहीं ॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर माँगहीं ।
मन बचन कर्म बिकार तजि तब चरन हम अनुरागहीं ॥

दो. - सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार ।
अंतरधान भए पुनि गए ब्रह्म आगार ॥
बैनतेय सुनु संभु तब आए जहँ रघुबीर ।
विनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर ॥१३॥

तीमरछं.- जय राम रमा रमनं समनं । भव ताप भयाकुल पाहि जनं ।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो । सरनागत माँगत पाहि प्रभो ॥
दससीस बिनासन बीस भुजा । कृत दूरि महा महि भूरि रुजा ।
रजनीचर बृंद पतंग रहे । सर पावक तेज प्रचंड दहे ॥
महि मंडल मंडल चारुतरं । धृत सायक चाप निषंग बरं ।
मद मोह महा ममता रजनी । तुम पुंज दिबाकर तेज अनी ॥
मनजात किरात निपात किए । मृग लोग कुभोग सरेन हिये ।
हति नाथ अनाथन्हि पाहि हरे । बिषया बन पाँवर भूलि परे ॥
बहु रोग बियोगन्हि पाहि हए । भवदंघ्रि निरादर के फल ये ।
भवसिंधु अगाध परे नर ते । पद पंकज प्रेमु न जे करते ॥
अति दीन मलीन दुखी नित हीं । जिन्हकें पद पंकज प्रीति नहीं ।
अवलंब भवंत कथा जिन्ह कें । प्रिय संत अनंत सदा तिन्ह कें ॥
नहिं राग न लोभ न मान मुदा । तिन्ह कें सम बैभव वा बिपदा ।

येहि तें तब सेबक होत मुदा । मुनि त्यागत जोग भरोस सदा ॥
करि प्रेमु निरंतर नेमु लिए । पद पंकज सेबत सुद्ध हिये ।
सम मानि निरादर आदरहीं । सब संत सुखी बिचरंति मही ॥
मुनि मानस पंकज भृंग भजे । रघुबीर महा रनधीर अजे ।
तब नाम जपामि नमामि हरी । भव रोग महा गद मानअरी ॥
गुन सील कृपा परमायतनं । प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं ।
रघुनंद निकदय द्वंद घनं । महिपाल बिलोकय दीन जनं ॥

दो. - बार बार बर माँगौं हरषि देहु श्रीरंग ।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग ॥
बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास ।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास ॥१४॥

सुनु खगपति यह कथा पावनी । त्रिबिध ताप भव भय दावनी ॥
महाराज कर सुभ अभिषेका । सुनत लहहिं नर विरति विवेका ॥
जे सकाम नर सुनहिं जे गाबहिं । सुख संपति नाना बिधि पावहिं ॥
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं । अंत काल रघुपति पुर जाहीं ॥
सुनहिं बिमुक्त बिरत जग माहीं । लहहिं भगति गति संपति नई ॥
खगपति राम कथा मैं बरनी । स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी ॥
बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी । मोह नदी कहुँ सुन्दर तरनी ॥
नित नव मंगल कोसलपुरी । हरषित रहहिं लोग सब कुरी ॥
नित नइ प्रीति राम पद पंकज । सबकें जिन्हहिं नमत सिव मुनि अज ॥
मंगन बहु प्रकार पहिराए । द्विजन्ह दान नाना बिधि पाए ॥

दो. - ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति ।
जान न जाने देवन तिन्ह गए मास षट बीति ॥१५॥

बिसरे गृह सपनेहु सुधि नाहीं । जिमि परद्रोह संत मन माहीं ॥
तब रघुपति सब सखा बोलाए । आइ सबन्हि सादर सिर नाए ॥
परम प्रीति समीप बैठारे । भगत सुखद मृदु बचन उचारे ॥
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई । मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई ॥

ता तें मोहिं तुम्ह अति प्रिय लागे । मम हित लागि भवन सुख त्यागे ॥
अनुज राज संपति वैदेही । देह गेह परिवार सनेही ॥
सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना । मृषा न कहऊँ ॥
सब के प्रिय सेवक यह नीती । मोरें अधिक दास पर प्रीती ॥

दो. - अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम ।
सदा सर्वगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम ॥१६॥

सुनि प्रभु वचन मगन सब भए । को हम कहाँ बिसरि तन गए ॥
एक टक रहे जोरि कर आगे । सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे ॥
परम प्रेमु तिन्ह कर प्रभु देखा । कहा बिबिध बिधि ज्ञान बिसेषा ॥
प्रभु सन्मुख कछु कहत न पारहिं । पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं ॥
तब प्रभु भूषन बसन मँगाए । नाना रंग अनूप सुहाए ॥
सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए । बसन भरत निज हाथ बनाए ॥
प्रभु प्रेरित लछिमनु पहिराए । लंकापति रघुपति मन भाए ॥
अंगद बैठ रहा नहिं डोला । प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला ॥

दो. - जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ ।
हिय धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ ॥
तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि ।
अति बिनीत बोलेउ बचन, मनहुँ प्रेम रस बोरि ॥१७॥

सुनु सर्वज्ञ कृपा सुख सिंधो । दीन दयाकर आरत बंधो ॥
मरती बेर नाथ मोहि बाली । गएउ तुम्हरेहि कोंछें घाली ॥
असरन सरन बिरिदु संभारी । मोहि जनि तजहु भगत हितकारी ॥
मोरें तुम्ह प्रभु गरु पितु माता । जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता ॥
तुम्हइ बिचारि कहहु नरनाहा । प्रभु तजि भवन काजु मम काहा ॥
बालक ज्ञान बुद्धि बल हीना । राखहु सरन नाथ जन दीना ॥
नीचि टहल गृह कै सब करिहौं । पद पंकज बिलोकि भय तरिहों ॥
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही । अब जनि नाथ कहहु गृह जाही ॥

दो. - अंगद बचन बिनीत सुनि रघुपति करुनासींव ।
प्रभु उठाइ उर ताएउ सजल नयन राजीव ॥
निज उर माल बसन मनि बलितनय पहिराइ ।
बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ ॥१८॥

भरत अनुज सौमित्र समेता । पठवन चले भगत कृत चेता ॥
अंगद हृदयँ प्रेमु नहिं थोरा । फिर फिर चितव राम की ओरा ॥
बार बार कर दंड प्रनामा । मन अस रहन कहहि मोहि रामा ॥
राम बिलोकनि बोलनि चलनी । सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी ॥
प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाखी । चलेउ हृदयँ पद पंकज राखी ॥
अति आदर सब कपि पहुँचाए । भाइन्ह सहित भरत पुनि आए ॥
तब सुग्रीव चरन गहि नाना । भाँति विनय कीन्ही हनुमाना ॥
दिन दस करि रघुपति पद सेवा । पुनि तब चरन देखिहौं देवा ॥
पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा । सेबहु जाइ कृपाआगारा ॥
अस कहि कपि सब चले तुरंता । अंगद कहइ सुनहु हनुमंता ॥

दो. - कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहौं कर जोरि ।
बार बार रघुनायकहिं सुरति कराएउ मोरि ॥
अस कहि चलेउ बालिसुत फिर आएउ हनुमंत ।
तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत ॥
कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि ।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि ॥१९॥

पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा । दीन्हे भूषन बसन प्रसादा ॥
जाहु भवन मम सुमिरन करहू । मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू ॥
तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता । सदा रहेहु पुर आवत जाता ॥
बचन सुनत उपजा सुख भारी । परेउ चरन भूरि लोचन बारी ॥
चरन नलिन उर धरि गृह आवा । प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा ॥
रघुपति चरित देखि पुरबासी । पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी ॥
रामराज बैठे त्रै लोका । हरषित भए गए सब सोका ॥

बयरु न कर काहू सन कोई । राम प्रताप बिषमता खोई ॥

दो. - बरनास्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग ॥२०॥

दैहिक दैबिक भौतिक तापा । सम राज नहिं काहुहि व्यापा ॥
सब नर करहिं परसपर प्रीती । चलहि स्वधर्म निरत श्रुति रीती ॥
चारिउ चरन धर्म जग माहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
राम भगति रत नर अरु नारी । सकल परम गति के अधिकारी ॥
अरुप मृत्यु नहिं कवनिउँ पीरा । सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबलुध न लक्षनहीना ॥
सब निर्दभ धरमरत घृनी । नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥
सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी । सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी ॥

दो. - राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं ।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहि ॥२१॥

भूमि सप्त सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू । येह प्रभुता कछु बहुत न तासू ॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी । येह बरनत हीनता घनेरी ॥
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी । फिरि येहि चरित तिन्हहुँ रति मानी ॥
सोउ जाने कर फल येह लीला । कहहिं महा मुनिवर दमसीला ॥
राम राज कर सुख संपदा । बरनि न सकइ फनीस सारदा ॥
सब उदार सब पर उपकारी । बिप्र चरन सेबक नर नारी ॥
एक नारि व्रत रत सब झारी । से मन बच क्रम पति हितकारी ॥

दो. - दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।
जीतहु मनहिं सुनिअ अस रामचन्द्र कें राज ॥२२॥

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन । रहहिं एक संग गज पंचानन ॥
खग मृग सहज वयरु बिसराई । सबहिं परसपर प्रीति बढ़ाई ॥
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा । अभय चरहिं वन करहिं अनंदा ॥
सीतल सुरभि पवन बह मंदा । गुंजत अति लै चलि मकरंदा ॥

लता बिटप मांगे मधु चवहीं । मनभावती धेनु पय स्रवहीं ॥
ससि संपन्न सदा रह घरनी । त्रेता भइ कृतजुग कै करनी ।
प्रगटी गिरिन्ह बिबिध मनि खानी । जगदातमा भूप जग जानी ॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी । सीतल अमल स्वाद सुखकारी ॥
सागर निज मरजादा रहहीं । डारहिं रतन तटन्हि नर लहहीं ॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा । अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा ॥

दो. - बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज ।
माँगे बारिद देहिं जल रामचन्द्र कें राज ॥२३॥

कोटिन्ह बाजिमेघ प्रभु कीन्हे । दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे ॥
श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर । गुनातीत अरु भोग पुरंदर ॥
पति अनुकूल सदा रह सीता । सोभाखानि सुसील बिनीता ॥
जानति कृपासिंधु प्रभुताई । सेबति चरन कमल मन लाई ॥
जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी । बिपुल सकल सेवा बिधि गुनी ॥
निज कर गृह परिचरजा करई । रामचन्द्र आयेसु अनुसरई ॥
जेहिं बिधि कृपासिंधु सुख मानइ । सोइ कर श्री सेवाबिधि जानइ ॥
कौसल्यादि सासु गृह माहीं । सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं ॥
उमा रमा ब्रह्मानि बंदिता । जगदंबा संततमनिंदिता ॥

दो. - जासु कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितव न सोई ।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोई ॥२४॥

सेबहि सानुकूल सब भाई । राम चरन रति अति अधिकाई ॥
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं । कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहीं ॥
रामु करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती । नाना भाँति सिखावहिं नीती ॥
हरषित रहहिं नगर के लोगा । करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा ॥
अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं । श्री रघुबीर चरन रति चहहीं ॥
दुइ सुत सुन्दर सीता जाए । लव कुश बेद पुरानन्ह गाए ॥
दोउ बिजई बिनई गुनमंदिर । हरि प्रतिबिम्ब मनहुँ अति सुन्दर ॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे । भए रूप गुन सील घनेरे ॥

दो. - ज्ञान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार ।
सोइ सच्चिदानन्द घन कर नर चरित उदार ॥२५॥

प्रात काल सरऊ करि मज्जन । बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन ॥
बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं । सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं ॥
अनुजन्ह संजुत भोजनु करहीं । देखि सकल जननी सुख भरहीं ॥
भरत सत्रुहन दूनौं भाई । सहित पवनसुत उपबन जाई ॥
बूझहिं बैठि राम गुनगाहा । कह हनुमान सुमति अवगाहा ॥
सुत बिमल गुन अति सुख पावहिं । बहुरि बहुरि करि बिनय कहाबहिं ॥
सब के गृह गृह होहिं पुराना । राम चरित पावन बिधि नाना ॥
नर अरु नारि राम गुन गानहिं । करहिं दिवस निसि जात न जानहिं ॥

दो. - अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज ।
सहस सेस नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज ॥२६॥

नारदादि सनकादि मुनीसा । दरसन लागि कोसलाधीसा ॥
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं । देखि नगरु बिराग बिसरावहिं ॥
जातरूप मनि रचित अटारी । नाना रंग रुचिर गच ढानी ॥
पुर चहुँ पास कोट अति सुन्दर । रचे कंगूरा रंग रंगबर ॥
नवग्रह निकर अनीक बनाई । जनु घेरी अमरावति आई ॥
महि बहु रंग रचित गच काँचा । जो बिलोकि मुनिवर मन नाचा ॥
धवल धाम ऊपर नभ चुंबत । कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत ॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं । गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं ॥

छं. - मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी बिद्रुम रची ।
मनि खंभ भीति बिरंची कनक मनि मरकत खचीं ॥
सुन्दर मनोहर मंदिरायत अंजिर रुचिर फटिक रचे ।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे ॥

दो. - चारु चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाइ ।
राम चरित जे निरखत मुनि मन लेहि चुराई ॥२७॥

सुमन बाटिका सबहिं लगाई । बिबिध भाँति करि जतन बनाई ॥

लता ललित बहु जाति सुनाई । फूलहिं सदा बसंत की नाईं ॥
गुंजत मधुकर मुखर मनोहर । मारुत त्रिबिध सदा बह सुन्दर ॥
नाना खग बालकन्हि जिआए । बोलत मधुर उड़ात सुहाए ॥
मोर हंस सारस पारावत । भवनन्हि पर सोभा अति पावत ॥
जहँ तहँ देखहि निज परिछाहीं । बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं ॥
सुक सारिका पढ़ावहिं बालक । कहहु राम रघुपति जनपालक ॥
राज दुआर सकल बिधि चारू । बीथी चौहट रुचिर बजारू ॥

छं. - बाजार रुचिर न बनइ बरनत वस्तु बिनु गथ पाइए ।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए ॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते ।
सब सुखी सब सच्चरित सुन्दर नारि नर सिसु जरठ जे ॥

दो. - उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर ।
बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं नीर ॥२८॥

दूरि फराक रुचिर सो घाटा । जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा ॥
पनिघट परम मनोहर नाना । तहाँ न पुरुष करहि अस्नाना ॥
राजघाट सब बिधि सुन्दर बर । मज्जहिं तहाँ बरन चारिउँ नर ॥
तीर तीर देवन्ह के मंदिर । चहुँ दिसि तिन्हकी उपबन सुन्दर ॥
महुँ कहुँ सरिता तीर उदासी । बसहिं ज्ञानरत मुनि संन्यासी ॥
तीर तीर तुलसिका सुहाई । बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई ॥
देखत पुरी अखिल अघ भागा । बन उपबन बापिका तड़ागा ॥

छं. - बापी तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहही ।
सोपान सुन्दर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहही ॥
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहि मधुप गुंजारहीं ।
आराम रम्य पिकादि खगरव जनु पथिक हंकारहि ॥

दो. - राम नाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ ।
अनिमादिक सुख संपदा रही अबध सब छाई ॥२९॥

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं । बैठि परसपर इहै सिखाबहि ॥

भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि । सोभा सील रूप गुन धामहि ॥
जलज बिलोचन स्यामल गातहि । पलक नयन इव सेवक त्रातहि ॥
भूत सर रुचिर चाप तूनीरहि । संत कंज बन रबि रनधीरहि ॥
काल कराल ब्याल खगराजहि । नमत राम अकाम ममता जहि ॥
लोभ मोह मृग जूथ किरातहि । मनसिज करि हरिजन सुखदातहि ॥
संसय सोक निबिड़ तम भानुहि । दनुज गहन घन दहन कृसानुहि ॥
जनक सुता समेत रघुबीरहि । कस न भजहु भंजन भव भीरहि ॥
बहु बासना मसक हिम ससिहि । सदा एक रस अज अबिनासिहि ॥
सुनि रंजन भंजन महि भारहि । तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि ॥

दो. - येहि बिधि नगर नारि नर करहि राम गुन गान ।
सानुकूल सब पर रहहिं संतत कृपानिधान ॥३०॥

जब तें राम प्रताप खगेसा । उदित भएउ अति प्रबल दिनेसा ॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका । बहुतेन्ह सुख बहुतन्ह मन सोका ॥
जिन्हहि सोक ते कहौं बखानी । प्रथम अबिद्या निसा नसानी ॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने । काम क्रोध कैरब सकुचाने ॥
बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ । ये चकोर सुख लहहि न काऊ ॥
मत्सर मान मोह मन चोरा । इन्ह कर हुनर न कबनिहुँ ओरा ॥
धरम तड़ाग ज्ञान बिज्ञाना । ये पंकज बिकसे बिधि नाना ॥
सुख संतोष बिराग बिबेका । बिगत सोक ये कोक अनेका ॥

दो. - यह प्रताप रबि जाकें उर जब करइ प्रकास ।
पछिले बाढ़हि प्रथम जे कहे ते पावहिं नास ॥३१॥

भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा । संग परम प्रिय पवनकुमारा ॥
सुन्दर उपबन देखन गए । तब तरु कुसुमित पल्लव नए ॥
जानि समय सनकादिक आए । तेजपुंज गुन सील सुहाए ॥
ब्रह्मानंद सदा लयलीना । देखत बालक बहुकालीना ॥
रूप धरें जनु चारिउ बेदा । समदरसी मुनि बिगत बिभेदा ॥
आसा बसन ब्यसन येह तिन्हीं । रघुपति चरित होहि तहँ सुनहीं ॥

तहाँ रहे सनकादि भवानी । जहँ घटसंभव मुनि बर ज्ञानी ॥
राम कथा मुनिवर बहु बरनी । ज्ञान जोति पावक जिमि अरनी ॥

दो. - देखि राम मुनि आवत हरखि दंडवत कीन्ह ।
स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहुँ दीन्ह ॥३२॥

कीन्ह दंडवत तीनिउ भाई । सहित पवनसुत सुख अधिकाई ॥
मुनि रघपति छबि अतुल बिलोकी । भए मगन मन सके न रोकी ॥
स्यामल गात सरोरुह लोचन ॥ सुन्दरता मंदिर भव मोचन ॥
एक टक रहे निमेष न लावहिं । प्रभु कर जोरे सीस नवावहिं ॥
तिन्ह कै दसा देखि रघुबीरा । स्रवत नयन जल पुलक सरीरा ॥
कर गहि प्रभु मुनिबर बैठारे । परम मनोहर बचन उचारे ॥
आज धन्य मैं सुनहु मुनीसा । तुम्हरे दरस जाहिं अब खीसा ॥
बड़े भाग पाइअ सतसंगा । बिनहि प्रयास होइ भव भंगा ॥

दो. - संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ ।
कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सब ग्रंथ ॥३३॥

सुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी । पुलकित तनु अस्तुति अनुसारी ॥
जय भगवत अनंत अनामय । अनघ अनेक एक करुनामय ॥
जय निर्गुन जयजय गुन सागर । सुख मंदिर सुन्दर अति नागर ॥
जय इंदिरारमन जय भूधर । अनुपमअज अनादि सोभाकर ॥
ज्ञान निधान अमान मानप्रद । पावन सुजसु पुरान बेद प्रद ॥
तज्ञ कृतज्ञ अज्ञता भंजन । नाम अनेक अनाम निरंजन ॥
सर्व सर्बगत सर्ब उरालय । बससि सदा हम कहुँ परिपालय ॥
द्वंद बिपति भव फंद विभंजय । हृदि बसि राम काम मद गंजय ॥

दो. - परमानन्द कृपायतन मन पर पूरन काम ।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्री राम ॥३४॥

देहु भगति रघुपति अति पावनि । त्रिबिधि ताप भव दाप नसावनि ॥
प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु । होइ प्रसन्न दीजै प्रभु येह बरु ॥
भय बारिधि कुंभज रघुनायक । सेवत सुलभ सकल सुख दायक ॥

मनसंभव दारुन दुख दारय । दीनबंधु समता बिस्तारय ॥
आस त्रास इरिषादि निबारकु । बिनय विवेक बिरति बिस्तारकु ॥
भूपि मौलि मनि मंडन धरनी । देहि भगति संसृति सरि तरनी ॥
मुनि मन मानस हंस निरंतर । चरन कमल बंदित अज संकर ॥
रघुकुल केतु सेतु श्रुति रक्षक । काल कर्म सुभाव गुन भक्षक ।
तारन तरन हरन सब दूषन । तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूषन ॥

दो. - बार बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिरु नाइ ।
ब्रह्मभवन सनकादि गे अति अभीष्ट बर पाइ ॥३५॥

सनकादिक बिधि लोक सिधाए । भ्रातन्ह राम चरन सिरु नाए ॥
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं । चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं ॥
सुनी चहहिं प्रभुमुख कै बानी । जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी ॥
अंतरजामी प्रभु सब जाना । बूझत कहहु काह हनुमाना ॥
जोरि पानि कह तब हनुमंता । सुनहु दीनदयाल भगबंता ॥
नाथ भरत कछु पूछन चहहीं । प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं ॥
तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ । भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ ॥
सुनि प्रभु बचन भरत गहे-चरना । सुनहु नाथ प्रनतारति हरना ॥

दो. - नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहु सोक न मोह ।
केवल कृपा तुम्हारि हिं कृपानन्द संदोह ॥३६॥

करौं कृपानिधि एक ढिठाई । मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई
संतन कै महिमा रघुराई । बहु बिधि वेद पुरानन्ह गाई ॥
श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि कर लच्छन । कृपासिंधु गुन ज्ञान बिचच्छन ॥
संत असंत भेद बिलगाई । प्रनत पाल मोहि कहहु बुझाई ॥
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता । अगनित श्रुति पुरान बिख्याता ॥
संत असंतन्हि कै असि करनी । जिमि कुठार चंदन आचरनी ॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई । निज गुन देइ सुगंध बसाई ॥

दो. - ता तें सुर सीसन्ह चढ़त जगबल्लभ श्रीखंड ।
अनल दाहि पीटत घनन्हि परसु बदन यह दंड ॥३७॥

बिषय अलंपट सील गुनाकर । पर दुख दुख सुख सुख देखें पर ॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी । लोभामरष हरष भव त्यागी ॥
कोमल चित दीनन्ह पर दाया । मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥
बिगत काम मम नाम परायन । सांति बिरति बिनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मइत्री । द्विज प्रद प्रीति धर्म जनयत्री ॥
ये सब लच्छन बसहिं जासु उर । जानेहु तात संत संतत फुर ॥
सम दस नियम नीति नहिं डोलहिं । परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥

दो. - निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय गुनमंदिर सुखपुंज ॥३८॥

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ । भूलेहु संगति करिअ न काऊ ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई । जिमि कपिलहि घालहिं हरहाई ॥
खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी । जरहि सदा पर संपति देखी ॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहि पराई । हरषहि मनहुँ परी निधि पाई ॥
काम क्रोध मद लोभ परायन । निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥
बयरु अकारन सब काहू सों । जो कर हित अनहित ताहू सों ॥
झूठन लेना झूठइ देना । झूठइ भोजन झूठ चबेना ॥
बोलहि मधुर बचन जिमि मोरा । खाइ महा अहि हृदय कठोरा ॥

दो. - पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद ।
ते नर पावँर पाप मय देह धरे मनुजाद ॥३९॥

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन । सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न ॥
काहू कै जो सुनहिं बड़ाई । स्वास लेहि जनु जूड़ी आई ॥
जब काहू कै देखहिं बिपती । सुखी भए मानहुँ जग नृपती ॥
स्वारथरत परिवार बिरोधी । लंपट काम लोभ अति क्रोधी ॥
मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं । आपु गए अरु घालहिं आनहिं ॥
करहिं मोहबस द्रोह परावा । संत संग हरिकथा न भावा ॥
अवगुन सिंधु मंदमति कामी । बेद बिदूषक पर धन स्वामी ॥

बिप्रद्रोह सुरद्रोह बिसेषा । दंभ कपट जिय धरें सुबेषा ॥

दो. - ऐसे अधम मनुज खल कृतजुत त्रेता नाहिं ।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं ॥४०॥

परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
निर्नय सकल पुरान बेद कर । कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर ॥
नर सरीर धरि जे पर पीरा । करहिं ते सहहिं महा भय भीरा ॥
करहि मोह बस नर अघ नाना । स्वारथ रत परलोक नसाना ॥
काल रूप तिन्ह कहुँ मैं भ्राता । सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता ॥
अस बिचारि जे परम सयाने । भजहिं मोहि संसृति दुख जाने ॥
त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक । भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक ॥
संत असंतन्ह के गुन भाषे । ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे ॥

दो. - सुनहु तात मायाकृत गुन अरु दोष अनेक ।
गुन यह उभय न देखिअहि देखिअ सो अबिबेक ॥४१॥

श्रीमुख बचन सुनत सब भाई । हरषे प्रेमु न हृदयँ समाई ॥
करहि बिनय अति बारहिं बारा । हनूमान हियँ हरष अपारा ॥
पुनि रघुपति निज मंदिर गए । येहि बिधि चरित करत नित नए ॥
बार बार नारद मुनि आवहिं । चरित पुनीत राम के गावहिं ॥
नित नव चरित देखि मुनि जाहीं । ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं ॥
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं । पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं ॥
सनकादिक नारदहि सराहहिं जद्यपि ब्रह्मनिरत मुनि आहहिं ॥
सुनि गुन गान समाधि बिसारी । सादर सुनहिं परम अधिकारी ॥

दो. - जीवनमुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहि तजि ध्यान ।
ये हरि कथा न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान ॥४२॥

एक बार रघुनाथ बोलाए । गुरु द्विज पुरबासी सब आए ॥
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन । बोले बचन भगत भव भंजन ॥
सुनहु सकल पुरजन मम बानी । कहौं न कछु ममता उर आनी ॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई । सुनहु करहु जौ तुम्हहि सुहाई ॥

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई । मम अनुसासन मानइ जोई ॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई । तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ॥
बड़े भाग मानुष तनु पावा । सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा । पाइ न जेहि परलोक सँवारा ॥

दो. - सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ ॥४३॥

येहि तन कर फल विषय न भाई । स्वगउ स्वल्प अंत दुखदाई ॥
नर तनु पाइ विषय मन देही । पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं ॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई । गुंजा ग्रहै परसमनि खोई ॥
आकर चारि लच्छ चौरासी । जोनिव भ्रमत यह जीव अबिनासी ॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा । काल कर्म सुभाव गुन घेरा ॥
कबहुँक करि करुना नर देही । देत ईस बिनु हेतु सदेही ॥
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो । सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो ।
करनधार सद्गुर दृढ़ नाबा । दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥

दो. - जो न तरइ भवसागर नर समाज अस पाइ ।
सो कृतनिंदक मंदमति आतमहन गति जाइ ॥४४॥

जौ परलोक इहाँ सुख चहहू । सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू ॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई । भगति मोरि पुरान श्रुति गाई ॥
ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका । साधन कठिन न मन कहुँ टेका ॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ । भक्ति हीन प्रिय मोहि न सोऊ ॥
भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी । बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ॥
पुन्य नुंज बिनु मिलहिं न संता । सतसंगति संसृति कर अंता ॥
पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा । मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा ॥
सानुकूल तेहि पर मुनि सेवा । जो तजि कपटु करइ द्विज सेबा ॥

दो. - औरो एक गुपुत मत सबहि कहौं कर जोरि ।
संकर भजन बिना नर भगति न पाबइ मोरि ॥४५॥

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । जोग न मख जप तप उपवासा ॥

सरल सुभाव न मन कुटिलाई । जथालाभ संतोष सदाई ॥
मोर दास कहाइ नर आसा । करइ तौ कहहु कहाँ बिस्वासा ॥
बहुत कहौ का कथा बढ़ाई । येहि आचरन बस्य मैं भाई ॥
बैर न बिग्रह आस न त्रासा । सुखमय ताहि सदा सब आसा ॥
अनारंभ अनिकेत अमानी । अनघ अरोष दक्ष बिज्ञानी ॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा । तृन सब विषय स्वर्ग अपबर्गा ॥
भगति पक्ष हठ नहिं सठताई । दुष्ट तर्क सब दूर बहाई ॥

दो. - मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह ।
ता कर सुख सोइ जानइ परानन्द संदोह ॥४६॥

सुनत सुधा सब बचन राम के । गहे सबनि पद कृपाधाम के ॥
जननि जनक गुर बंधु हमारे । कृपानिधान मान ते प्यारे ॥
तनु धनु धाम राम हितकारी । सब बिधि तुमह प्रनतारतिहारी ॥
अस सिख तुम्ह बिनु देह न कोऊ । मातु पिता स्वारथ रत ओऊ ॥
हेतु रहित जग जुग उपकारी । तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी ॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीं । सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं ॥
सब के बचन प्रेम रस साने । सुनि रघुनाथ हृदयँ हरषाने ॥
निज निज गृह गए आयेसु पाई । बरनत प्रभु बतकही सुहाई ॥

दो. - उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप ।
ब्रह्म सच्चिदानन्द घन रघुनायक जहँ भूप ॥४७॥

एक बार बसिष्ठ मुनि आए । जहाँ राम सुखधाम सुहाए ॥
अति आदर रघुनायक कीन्हा । पद पखारि चरनोदक लीन्हा ॥
राम सुनहुँ मुनि कह कर जोरी । कृपासिंधु विनती कछु मोरी ॥
देखि देखि आचरन तुम्हारा । होत मोह मम हृदयँ अपारा ॥
महिमा अमित बेद नहिं जाना । मैं केहि भाँति कहौं भगवाना ॥
उपरोहिती कर्म अति मंदा । बेद पुरान सुमृति कर निंदा ॥
जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही । कहा लाभु आगे सुत तोही ॥
परमातमा ब्रह्म नररूपा । होइहि रघुकुल भूषन भूपा ॥

दो. - तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जज्ञ ब्रत दान ।
जा कहुँ करिअ सो पैहौं धर्म न येहि सब आन ॥४८॥

जब तप नियम जोग निज धर्मा । श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा ॥
ज्ञान दया तीरथ मज्जन । जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन ॥
आगम निगम पुरान अनेका । पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर । सब साधन कर येहि फल सुन्दर ॥
छूटइ मल कि मलहि कें धोयें । घृत कि पाव कोउ बारि बिलोएँ ॥
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई । अभिअंतर मल कबहुँ न जाई ॥
सोइ सर्बज्ञ तज्ञ सोइ पंडित । सोइ गुन गृह विज्ञान अखंडित ॥
दक्ष सकल लक्षन जुत सोई । जाकें पद सरोज रति होई ॥

दो. - नाथ एक बर मागौं राम कृपा करि देहु ।
जन्म जन्म पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ॥४९॥

अस कहि मुनि बसिष्ठ गृह आए । कृपासिंधु कें मन अति भाए ॥
हनूमान भरतादि भ्राता । संग लिए सेबक सुखदाता ॥
पुनि कृपाल पुर बाहेर गए । गज रथ तुरग मँगावत भए ॥
देखि कृपा कर सकल सराहे । दिए उचित जिन्ह जिन्ह तेइ चाहे ॥
हरन सकल स्रम प्रभु स्रम पाई । गए जहाँ सीतल अवँराई ॥
भरत दीन्ह निज बसन ढसाई । बैठे प्रभु सेवहि सब भाई ॥
मारुत सुत तब मारुत करई । पुलक बपुष लोचन जल भरई ॥
हनूमान समान बड़ भागी । नहिं कोउ राम चरन अनुरागी ॥
गिरजा जासु प्रीति सेबकाई । बार बार प्रभु निज मुख गाई ॥

दो. - तेहि अवसर मुनि नारद आए करतल बीन ।
गावन लागे राम कल कीरति सदा नबीन ॥५०॥

मामवलोकय पंकज लोचन । कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन ॥
नील तामरस स्याम कामअरि । हृदय कंज मकरंद मधुप हरि ॥
जातुधान बरूथ बल भंजन । मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन ॥
भूसुर ससि नव बृंद बलाहक । असरन सरन दीन जन गाहक ॥

भुजबल विपुल भार महि खंडित । खर दूषन बिराध बध पंडित ॥
रावनारि सुख रूप भूप बर । जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर ॥
सुजसु पुरान बिदित निगमागम । गावत सुर मुनि संत समागम ॥
कारुनीक ब्यलीक मद खंडन । सब बिधि कुसल कोसला मंडन ॥
कलि मल मथन ना ममताहन । तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन ॥

दो. - प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम ।
सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम ॥५१॥

गिरिजा सुनहु बिसद ये कथा । मैं सब कही मोरि मति जथा ॥
रामचरित सत कोटि अपारा । श्रुति सारदा न बरनै पारा ॥
रामु अनंत अनंत गुनानी । जन्म कर्म अनंत नामानी ॥
जल सीकर महि रज गनि जाहीं । रघुपति चरित न बरनि सिराहीं ॥
बिमल कथा हरिपद दायनी । भगति होई सुनि अनपायनी ॥
उमा कहेउँ सब कथा सुनाई । जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई ॥
कछुक राम गुन कहेउँ बखानी । अब का कहौं सो कहहु भवानी ॥
सुनि सुभ कथा उमा हरषानी । बोली अति बिनीत मृदु बानी ॥
धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी । सुनेउँ राम गुन भय भव हारी ॥

दो. - तुम्हरी कृपा कृपायन अब कृतकृत्य न मोह ।
जानेउँ राम प्रताप प्रभु चिदानन्द संदोह ॥
नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर ।
श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मतिधीर ॥५२॥

रामचरित जे सुनत अघाहीं । रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं ॥
जीवनन्मुक्त महामुनि जेऊ । हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ ॥
भवसागर चह पार जो पावा । राम कथा ता कहुँ दृढ़ गावा ॥
विषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा । स्रवन सुखद अरु मन अभिरामा ॥
स्रवनवंत अस को जग माहीं । जाहि न रघुपति चरित सुहाहीं ॥
ते जड़ जीव निजात्मक घाती । जिन्हहि न रघुपति कथा सुहाती ॥
हरिचरित्रमानस तुम्ह गावा । सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा ॥

तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई । कागभुसुंडि गरुड़ प्रति गाई ॥

दो. - बिरति ज्ञान बिज्ञान दृढ़ राम चरन अति नेह ।
बायस तन रघुपति भगति मोहि परम संदेह ॥५३॥

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी । कोउ एक होइ धर्मब्रत धारी ॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई । विषय बिमुख बिराग रत होई ॥
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई । सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई ॥
ज्ञानवंत कोटिक महँ कोऊ । जीवन्मुक्त सकृत जग सोऊ ॥
तिन्ह सहस महँ सब सुख खानी । दुर्लभ ब्रह्मलीन बिज्ञानी ॥
धर्मसील बिरक्त अरु ज्ञानी । जीवनन्मुक्त ब्रह्म पर प्रानी ॥
सब तें सो दुर्लभ सुरराया । राम भगति रत गत मद माया ॥
सो हरि भगति काग किमि पाई । बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई ॥

दो. - राम परायन ज्ञान रत गुनागार मति धीर ।
नाथ कहहु केहि कारन पाएउ काग सरीर ॥५४॥

यह प्रभु चरित पवित्र सुहावा । कहहु कृपाल काग कहँ पावा ॥
तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी । कहहु मोहि अति कौतुक भारी ॥
गरुड़ महा ज्ञानी गुनरासी । हरिसेवक अति निकट निवासी ॥
तेहि केहि हेतु काग सन जाई । सुनी कथा मुनि निकर बिहाई ॥
कहहु कवन बिधि भा संबादा । दोउ हरि भगत काग उरगादा ॥
गौरि गिरा मुनि सरल सुहाई । बोले सिव सादर सुख पाई ॥
धन्य सती पावनि मति तोरी । रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी ॥
सुनहु परम पुनीत इतिहासा । जो सुनि सकल लोक भ्रम नासा ॥
उपजइ राम चरन बिस्वासा । भवनिधि तर नर बिनहिं प्रयासा ॥

दो. - ऐसिअ प्रस्न बिहंगपति कीन्हि काग सन जाइ ।
सो सब सादर कहिहौं सुनहु उमा मन लाइ ॥५५॥

मैं जिमि कथा सुनी भय मोचनि । सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि ॥
प्रथम दक्ष गृह तब अवतारा । सती नाम तब रहा तुम्हारा ॥
दक्ष यज्ञ तब भा अपमाना । तुम्ह अति क्रोध तजे तब प्राना ॥

मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा । जानहु तुम्ह सो सकल प्रसंगा ॥
तब अति सोच भएउ मन मोरे । सुखी भएउँ बियोग प्रिय तोरे ॥
सुन्दर बन गिरि सरित तड़ागा । कौतुक देखन फिरौं बेरागा ॥
गिरि सुमेरु उत्तर दिसि दूरी । नील सैल एक सुन्दर भूरी ॥
तासु कनकमय सिखर सुहाए । चारि चारु मोरे मन भाए ॥
तिन्ह पर एक एक बिटप बिसाला । बट पीपर पाकरी रसाला ॥
सैलोपरि सर सुन्दर सोहा । मनि सोपान देखि मन मोहा ॥

दो. - सीतल अमल मधुर जल जलज बिपुल बहु रंग ।
कूजत कलरव हंस गन गुंजत मंजुल भृंग ॥५६॥

तेहि गिरि रुचिर बसइ खग सोई । तासु नास कलपांत न होई ॥
मायाकृत गुन दोष अनेका । मोह मनोज आदि अबिबेका ॥
रहे ब्यापि समस्त जग माहीं । तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं ॥
तहँ बसि हरिहि भजइ जिमि कागा । सो सुनु उमा सहित अनुरागा ॥
पीपर तरु तर ध्यान सो धरई । जाप यज्ञ पाकरि तर करई ॥
आँव छाँह कर मानस पूजा । तजि हरि भजनु काजु नहिं दूजा ॥
बर तर कह हरि कथा प्रसंगा । आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा ॥
राम चरित बिचित्र बिधि नाना । प्रेम सहित कर सादर माना ॥
सुनहिं सकल मति बिमल मराला । बसहिं निरंतर जे तेहि काला ॥
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा । उर उपजा आनन्द बिसेषा ॥

दो. - तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निबास ।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आएउँ कैलास ॥५७॥

गिरिजा कहउँ सो सब इतिहासा । मैं जेहि समय गएउँ खग पासा ॥
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू । गए काग पहिं खगकुल केतू ॥
जब रघुनाथ कीन्हि रन क्रीड़ा । समुझत चरित होत मोहि ब्रीड़ा ॥
इंद्रजीतकर आपु बंधायो । जब नारद मुनि गरुड़ पठायो ॥
बंधन कोटि गयो उरगादा । उपजा हृदयँ प्रचंड बिषादा ॥
प्रभु बंधन समुझत बहु भाँती । करत बिचार उरगआराती ॥

ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा । माया मोह पार परमीसा ॥
सो अवतार सुनेउँ जग माहीं । देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं ॥

दो. - भय बंधन तें छूटहिं नर जपि जा कर नाम ।
खर्ब निसाचर बांधेउ नागपास सोइ राम ॥५८॥

नाना भाँति मनहि समुझावा । प्रगट न ज्ञान हृदयँ भ्रम छाया ॥
खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई । भएउ मोह बस तुम्हरिहिं नाईं ॥
ब्याकुल गएउ देवरिषि पाहीं । कहेसि जो संसय निज मन माँहीं ॥
सुनि नारदहि लागिअति दाया । सुनु खग प्रबल राम कै माया ॥
जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई । बरिआई बिमोह मन करई ॥
जेहि बहु बार नचावा मोहीं । सोइ ब्यापी बिहंगपति तोही ॥
महामोह उपजा उर तोरे । मिटिहि न बेगि कहे खग मोरे ॥
चतुरानन पहिं जाहु खगेसा । सोई करेहु जेहि होइ निदेसा ॥

दो. - अस कहि चले देवरिषि करत राम गुन गान ।
हरि माया बल बरनत पुनि पुनि परम सुजान ॥५९॥

तब खगपति बिरंचिपहि गएऊ । निज संदेह सुनावत भएऊ ॥
सुनि बिरंचि रामहि सिरु नावा । समुझि प्रताप प्रेम उर छावा ॥
मन महुँ करइ बिचार विधाता । मायाबस कबि कोबिद ज्ञाता ॥
हरि माया कर अमित प्रभावा । बिपुल बार जेहि मोहिं नचावा ॥
अगजग मय जग मम उपराजा । नहिं आचरज मोह खगराजा ॥
तब बोले बिधि गिरा सुहाई । जान महेस राम प्रभुताई ॥
बैनतेय संकर पहिं जाहू । तात अनत पूछहु जनि काहूँ ॥
तहँ होइहि सब संसय हानी । चलेउ बिहंग सुनत बिधि बानी ॥

दो. - परमातुर विहंगपति आएउ तब मो पास ।
जात रहेउँ कुबेर गृह रहिहु उमा कैलास ॥६०॥

तेहि मम पद सादर सिरु नावा । पुनि आपन संदेह सुनाया ॥
सुनि ताकरि बिनती मृदु बानी । प्रेम सहित मैं कहैउँ भवानी ॥
मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही । कवन भाँति समुझावौं तोही ॥

तहि होइ सब संसय भंगा । जब बहु काल करिअ सतसंगा ॥
सुनिअ तहाँ हरि कथा सुहाई । नाना माँति मुनिन्ह जो गाई ॥
जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना । प्रभु प्रतिपाद्य रामु भगवाना ॥
नित हरि कथा होति जहँ भाई । पठवौं तहाँ सुनहु तुम्ह जाई ॥
जाइहि सुनत सकल संदेहा । रामचरन होइहि अति नेहा ॥

दो. - बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गए बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ॥६१॥

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा । किएँ जोग जप ज्ञान बिरागा ॥
उत्तर दिसि सुन्दर गिरि नीला । तहँ रह काग भुसुंडि सुसीला ॥
राम भगति पथ परम प्रबीना । ज्ञानी गुनगृह बहुकालीना ॥
राम कथा सो कहइ निरंतर । सादर सुनहिं बिबिध बिहंग बर ॥
जाइ सुनहु तहँ हरिगुन भूरी । होइहि मोहजनित दुख दूरी ॥
मैं जब तेहि सब कहा बुझाई । चलेउ हरषि मम पद सिरु नाई ।
ता तें उमा न मैं समुझावा । रघुपति कृपा मरम मैं पावा ॥
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना । सो खोवै चह कृपानिधाना ॥
कछु तेहि तें पुनि मैं नहि राखा । समुझइ खग खग ही कै भाषा ॥
प्रभु माया बलवंत भवानी । जाहि न मोह कबन अस ज्ञानी ॥

दो. - ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवन पति कर जान ।
ताहि मोह माया नर पाँवर करहि गुमान ॥
सिव बिरंचि कहँ मोहै को है बपुरा आन ।
अस जिय जानि भजहिं मुनि मायापति भगवान ॥६२॥

गएउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुंडी । मति अकुंठ हरि भगति अखंडी ॥
देखि सैल प्रसन्न मन भएऊ । माया मोह सोच सब गएऊ ॥
करि तड़ाग मज्जन जल पाना । बट तर गएउ हृदयँ हरषाना ॥
बृद्ध बृद्ध बिहंग तह आए । सुनइ राम के चरित सुहाए ॥
कथा अरंभ करइ सोइ चाहा । तेही समय गएउ खगनाहा ॥
आवत देखि सकल खगराजा । हरषेउ बायस सहित समाजा ॥

अति आदर खगपति कर कीन्हा । स्वागत पूँछि सुआसन दीन्हा ॥
करि पूजा समेत अनुरागा । मधुर बचन तब बोलेउ कागा ॥

दो. - नाथ कृतारथ भएउँ मइँ तव दरसन खगराज ।
आयेसु देहु सो करौं अब प्रभु आएहु केहि काज ॥
सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस ।
जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस ॥६३॥

सुनहु तात जेहि कारन आएउँ । सो सब गएउ दरस तब पाएउँ ॥
देखि परम पावन तब आस्रम । गएउ मोह संसय नाना भ्रम ॥
अब श्री राम कथा अतिपावनि । सदा सुखद दुख पूंज नसावनि ॥
सादर तात सुनावहु मोही । बार बार बिनवौ प्रभु तोही ॥
सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता । सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता ॥
भएउ तासु मन परम उछाहा । लाग कहइ रघुपति गनगाहा ॥
प्रथमहिं अति अनुराग भवानी । राम चरित सर कहेसि बखानी ॥
पुनि नारद कर मोह अपारा । कहेसि बहुरि रावन अवतारा ॥
प्रभु अवतार कथा पुनि गाई । तब सिसु चरित कहेसि मन लाई ॥

दो. - बाल चरित कहि बिबिध बिधि मन महुँ परम उछाह ।
रिषि आगमन कहेसि पुनि श्री रघुबीर बिबाह ॥६४॥

बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा । पुनि नृप बचन राज रस भंगा ॥
पुर बासिन्ह कर बिरह बिषादा । कहेसि राम लछिमन संबादा ॥
बिपिन गबनु केवट अनुरागा । सुरसरि उतरि निवास प्रयागा ॥
बालमीकि प्रभु मिलन बखाना । चित्रकूट जिमि बसे भगवाना ॥
करि नृप क्रिया संग पुरबासी । भरत गए जहँ प्रभु सुखरासी ॥
पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाए । लै पादुका अवधपुर आए ॥
भरत रहनि सुरपतिसुत करनी । प्रभु अरु अत्रि भेंट पुनि बरनी ॥

दो. - कहि बिराग बध जेहि बिधि देह तजी सरभंग ।
करनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभु अगस्ति सन संग ॥६५॥

कहि दंडक बन पावनताई । गीध मइत्री पुनि तेहि गाई ॥

पुनि प्रभु पंचवटी कृत बासा । भंजी सकल मुनिन्ह की त्रासा ॥
पुनि लछिमन उपदेस अनूपा । सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा ॥
खरदूषन बध बहुरि बखाना । जिमि सबु मरमु दसानन जाना ॥
दसकंधर मारीच बतकही । जेहि बिधि भई सो सब तेहि कही ॥
पुनि माया सीता कर हरना । श्रीरघुबीर बिरह कछु बरना ॥
पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्ही । बधि कबंध सबरिहि गति दीन्ही ॥
बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा । जेहि बिधि गए सरोवर तीरा ॥

दो. - प्रभु नारद संबाद कहि मारुति मिलन प्रसंग ।
पुनि सुग्रीव मिताई बालि मान कर भंग ॥६६॥

जेहि बिधि कपिपति कीस पठाए । सीता खोज सकल दिसि धाए ॥
बिबर प्रबेस कीन्ह जेहि भाँती । कपिन्ह बहोरि मिला संपाती ॥
सुनि सब कथा समीरकुमारा । नाँघत भएउ पयोधि अपारा ॥
लंका कपि प्रबेस जिमि कीन्हा । पुनि सीतहि धीरजु जिमि दीन्हा ॥
बन उजारि रावनहि प्रबोधी । पुर दहि नाँघेउ बहुरि पयोधी ॥
आए कपि सब जहँ रघुराई । बैदेही की कुसल सुनाई ॥
सेन समेत जथा रघुबीरा । उतरे जाइ बारिनिधि तीरा ॥
मिला बिभीषनु जेहि बिधि आई । सागर निग्रह कथा सुनाई ॥

दो. - सेतु बाँधि कपि सेन जिमि उतरी सागर पार ।
गएउ बसीठी बीर बर जेहि बिधि बालिकुमार ॥
निसिचर कीस लराई बरनिसि बिबिध प्रकार ।
कुंभकरन घननाद कर बल पौरुष संघार ॥६७॥

निसिचर निकर मरन बिधि नाना । रघुपति रावन समर बखाना ॥
रावन बध मंदोदरि सोका । राजु बिषीसन देव असोका ॥
सीता रघुपति मिलन बहोरी । सुरन्ह कीन्हि अस्तुति कर जोरी ॥
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता । अवध चले प्रभु कृपा निकेता ॥
जेहि बिधि राम नगर निज आए । बायस बिसद चरित सब गाए ॥
कहेसि बहोरि राम अभिषेका । पुर बरनत नृपनीति अनेका ॥

कथा समस्त भुसुंडि बखानी । जो मैं तुम्ह मन परम भवानी ॥
मुनि सब राम कथा खगगाहा । कहत बचन मन परम उछाहा ॥

दो. - गएउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित ।
भएउ राम पद नेह तव प्रसाद रन महुँ बायसतिलक ॥
मोहि भएउ अति मोह प्रभु बंधन रन महुँ निरखि ।
चिदानन्द संदोह राम बिकल कारन कवन ॥६८॥

देखि चरित अति नर अनुसारी । भएउ हृदयँ मम संसय भारी ॥
सोइ भ्रम अब हित करि मैं जाना । कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना ॥
जो अति आतप ब्याकुल होई । तरु छाया सुख जानइ सोई ॥
जौं नहिं होत मोह अति मोही । मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही ॥
सुनतेउँ किमि हरि कथा सुहाई । अति विचित्र बहु बिधि तुम्ह गाई ॥
निगमागम पुरान मत येहा । कहहिं सिद्ध मुनि नहिं संदेहा ॥
संत विसुद्ध मिलहि परि तेही । चितवहिं रामु कृपा करि जेहीं ॥
राम कृपा तब दरसन भएऊ । तब प्रसाद सब संसय गएऊ ॥

दो. - सुनि बिहंगपति बानी सहित विनय अनुराग ।
पुलकि गात लोचन सजल मन हरषेउ अति काग ॥
स्रोता सुमति सुसील सुचि कथारसिक हरिदास ।
पाइ जन्म अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास ॥६९॥

बोलेउ कागभुसुंडि बहोरी । नभगनाथ पर प्रीति न थोरी ॥
सब बिधि नाथ पूज्य तुम्ह मेरे । कृपापात्र रघुनायक केरे ॥
तुम्हहि न संसय मोह न माया । मो पर नाथ कीन्हि तुम्ह दाया ॥
पठइ मोहि मिस खगपति तोही । रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही ॥
तुम्ह निज मोह कही खगसाईं । सो नहिं कछु आचरज गोसाईं ॥
नारद भव बिरंचि सनकादी । जे मुनिनायक आतमबादी ॥
मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ॥
तृस्ना केहिं न कीन्ह बौराहा । केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा ॥

दो. - ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार ।
केहि के लोभ बिडंबना कीन्हि न येहि संसार ॥
श्रीमद् बक न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि ।
मृगलोचनि लोचन सर को अस लाग न जाहि ॥७०॥

गुन कृत सन्यपात नहिं केही । कोउ न मान मद तजेउ निबेही ॥
जौबन ज्वर केहि नहिं बलकावा । ममता केहि कर जसु नसावा ॥
मच्छर केहि कलंक न लावा । काहि न सोक समीर डोलावा ॥
चिंता साँपिनि को नहिं खाया । को जग जाहि न ब्यापी माया ॥
कीट मनोरथ दारु सरीरा । जेहि न लाग घुन को अस धीरा ॥
सुत बित लोक ईषना तीनी । केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी ॥
यह सब माया कर परिवारा । प्रबल अमिति को बरनै पारा ॥
सिव चतुरानन जाहि डेराहीं । अपर जीव केहि लेखे माहीं ॥

दो. - ब्याधि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड ।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाखंड ॥
सो दासी रघुबीर कै समझे मिथ्या सोपि ।
छूट न राम कृपा बिनु नाथ कहौं पद रोपि ॥७१॥

जो माया सब जगहि नचावा । जासु चरित लखि काहु न पावा ॥
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा । नाच नटी इव सहित समाजा ॥
सोइ सच्चिदानन्द घन रामा । अज बिज्ञान रूप गुन धामा ॥
ब्यापक ब्यापि अखंड अनंता । अखिल अमोघ सक्ति भगवंता ॥
अगुन अदभ्र गिरागोतीता । सबदरसी अनबद्य अजीता ॥
निर्मल निराकारनिर्मोही । नित्य निरंजन सुखसंदोहा ॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी । ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ॥
इहां मोह कर कारन नाहीं । रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं ॥

दो. - भगत हेतु भगबान प्रभु राम धरेउ तनु भूप ।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ॥
जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ ।

सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ ॥७२॥

असि रघुपति लीला उरगारी । दनुज बिमोहनि जन सुखकारी ॥
जे मति मलिन बिषय बस कामी । प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी ॥
नयन दोष जा कहँ जब होई । पीत बरन ससि कहुँ कह सोई ॥
जब जेहि दिसिभ्रम होई खगेसा । सो कह पच्छिम उएउ दिनेसा ॥
नौकारूप चलत जग देखा । अचल मोहबस आपुहि लेखा ॥
बालक भ्रमहि न भ्रमहि गृहादी । कहहिं परसपर मिथ्याबादी ॥
हरि बिषइक अख मोह बिहंगा । सपनेहुँ नहिं अग्यान प्रसंगा ॥
मायाबस मतिमंद अभागी । हृदयँ जमनिका बहु बिधि लागी ॥
ते सठ हठबस संसय करहीं । निज अज्ञान राम पर धरहीं ॥

दो. - काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुख रूप ।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप ॥
निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ ॥७३॥

सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई । कही जथामति कथा सुहाई ॥
जेहि बिधि मोह भएउ प्रभु मोही । सोउ सब कथा सुनावौं तोही ॥
राम कृपा भाजन तुम्ह ताता । हरि गुन प्रीति मोहि सुखदाता ॥
ताते नहिं कछु तुम्हहि दुरावौं । परम रहस्य मनोहर गावौं ॥
सुनहु राम कर सहज सुभाऊ । जन अभिमान न राखहिं काऊ ॥
संसृति मूल तूलपद नाना । सकल सोकदायक अभिमाना ॥
ता तें करहि कृपानिधि दूरी । सेबक पर ममता अति भूरी ॥
जिमि सिसु तन मन होइ गोसाईं । मातु चिराव कठिन की नाईं ॥

दो. - जदपि प्रथम दुख पावइ राखइ बाल अधीर ।
ब्याधि नास हित जननी गनइ न सो सिसु पीर ॥
तिमि निज दास कर हरहि मान हित लागि ।
तुलसिदास रघुपति ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि ॥७४॥

राम कृपा आपनि जड़ताइ । कहौं खगेस सुनहु मन लाईं ॥

जब जब राम मनुज तनु धरहीं । भगत हेतु लीला बहु करहीं ॥
तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ । बाल चरित बिलोकि हरषाऊँ ॥
जनम महोत्सव देखौं जाई । बरष पाँच तहँ रहौ लोभाई ॥
इष्ट देव मम बालक रामा । सोभा बपुष कोटि सत कामा ॥
निज प्रभु वदन निहारि निहारी । लोचन सुफल करौं उरगारी ॥
लघु बायस बपु धरि हरि संगा । देखौं बाल चरित बहु रंगा ॥

दों. - लरिकाई जहँ जहँ फिरहिं तहँ तहँ संग उड़ाउँ
जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ ॥
एक बार अति सैसबँ चरित किए रघुबीर ।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ पुलकित भएउ सरीर ॥७५॥

कहइ भुसुँडि सुनहु खगनायक । राम चरित सेवक सुखदायक ॥
नृप मंदिर सुन्दर सब भाँती । खचित कनक मनि नाना जाती ॥
बरनि न जाइ रुचिर अंगनाई । जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई ॥
बाल विनोद करत रघुराई । बिचरत अजिर जननि सुखदाई ॥
मरकत मृदुल कलेवर स्यामा । अंग अंग प्रति छबि बहु कामा ॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना । पदज रुचिर नख ससि दुति हरना ॥
ललित अंक कुलिसादिक चारी । नूपुर चारु मधुर रव कारी ॥
चारु पुरट मनि रचित बताई । कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई ॥

दो. - रेखा त्रय सुन्दर उदर नाभि रुचिर गंभीर ।
उर आयत भ्राजत बिबिध बाल बिभूषन चीर ॥७६॥

अरुन पानि नख करज मनोहर । बाहु बिसाल बिभुषन सुन्दर ॥
कंध बाल केहरि दर ग्रीवाँ । चारु चिबुक आनन छबि सीवाँ ॥
कलबल बचन अधर अरुनारे । दुइ दुइ दसन बिसद बर बारे ॥
ललित कपोल मनोहर नासा । सकल सुखद ससिकर सम हासा ॥
नील कंज लोचन भव मोचन । भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥
बिकट भृकुटि सम स्रवन सुहाए । कुंचित कच मेचक छबि छाए ॥
पीत झीनि झगुली तन सोही । किलकनि चितबनि भावति मोही ॥

रूपरासि नृप अजिर बिहारी । नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी ॥
मोहि सन करहिं बिबिध बिधि क्रीड़ा । बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा ॥
किलकत मोहि धरन जब धावहिं । चलौं भागि तब पूप देखावहिं ॥

दो. - आवत निकट हसहि प्रभु भाजत रुदन कराहिं ।
जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं ॥
प्राकृत सिसु इव लीला देखि भएउ मोहि मोह ।
कवन चरित करत प्रभु चिदानन्द संदोह ॥७७॥

एतना मन आनत खगराया । रघुपति प्रेरित ब्यापी माया ॥
सो माया न दुखद मोहि काही । आन जीव इव संसृति नाही ॥
नाथ इहाँ कुछ कारन आना । सुनहु सो सावधान हरिजाना ॥
ग्यान अखंड एक सीताबर । मायाबस्य जीव सचराचर ॥
जौ सब के रह ज्ञान एक रस । ईस्वर जीवहिं भेद कहहु कस ॥
माया बस्य जीव अभिमानी । ईस बस्य माया गुनखानी ॥
परबस जीव स्वबस भगवंता । जीव अनेक एक श्रीकंता ॥
मुधा भेद जद्यपि कृत माया । बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ॥

दो. - रामचन्द्र के भजन बिनु जो चह पद निरबान ।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ विषान ॥
राकापति षोडष उअहिं तारागन समुदाइ ।
सकल गिरिन्ह दब लाइअ बिनु रबि राति न जाइ ॥७८॥

ऐसेहि बिनु हरि भजन खगेसा । मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा ॥
हरि सेवकहि त ब्याप अबिद्या । प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या ॥
ता तें नास न होइ दास कर । भेद भगति बाढ़इ बिहंग बर ॥
भ्रम ते चकित राम केहि देखा । बिहँसि सो सुनु चरित बिसैषा ॥
तेहि कौतुक कर मरमु न काहूँ । जाना अनुज न मातु पिता हूँ ॥
जानुपानि धाए मोहि धरना । स्यामल गात अरुन कर चरना ॥
तब मैं भागि चलेउँ उरगारी । राम गहन कहँ भुजा पसारी ॥
जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा । तहँ हरि भुज देखौं निज पासा ॥

दो. - ब्रह्मलोक लगि गएउँ मैं चितएउँ पाछ उड़ात ।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहिं मोहि तात ॥
सप्ताबरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि
गएउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भएउँ बहोरि ॥७९॥

मूदेउँ नयन असित जब भएऊँ । पुनि चितवत कोसलपुर गएऊँ ॥
मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं । बिहँसत तुरत गएउँ मुख माहीं ॥
उदर माँझ सुनु अंडजराया । देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया ॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका । रचना अधिक एक ते एका ॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा । अगनित उडगन रबि रजनीसा ॥
अगनित लोकपाल जम काला । अगनित भूधर भूमि बिसाला ॥
सागर सरि सर बिपिन अपारा । नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा ॥
सुर मुनि नाग नर किन्नर । चारि प्रकार जीव सचराचर ॥

दो. - जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहुँ न समाइ ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ ॥
एक एक ब्रह्मांड महुँ रहौं बरष सत एक ।
येहि बिधि देखत फिरौं मैं अंडकटाह अनेक ॥८०॥

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता । भिन्न बिस्नु सिव मनु दिसित्राता ॥
नर गंधर्व सूत बेताला । किन्नर निसिचर पसु खग ब्याला ॥
देव दनुज गन नाना जाती । अकल जीव तहँ आनहि भाँती ॥
बसहि सरि सागर सर गिरि नाना । सब प्रपंच तहँ आनइ आना ॥
अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा । देखेउँ जिनसे अनेक अनूपा ॥
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी । सरजू भिन्न भिन्न नर नारी ॥
दसरथ कौसल्या सुनु ताता । बिबिध रूप भरतादि भ्राता ॥
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा । देखौं बाल बिनोद उदारा ॥

दो. - भिन्न मैं दीख सबु अति विचित्र हरिजान ।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन ॥
सोइ सिसुपन सोइ सोभा सोइ कृपाल रघुबीर ।

भुवन भुवन देखत फिरौं प्रेरित मोह समीर ॥८१॥

भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका । बीते मनहुँ कलप सत एका ॥

फिरत फिरत निज आश्रम आएउँ । तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँएऊँ ॥

निज प्रभु जनम अवध सुनि पाएउँ । निर्भर प्रेम हरषि उठि धाएउँ ॥

देखेउँ जनम महोत्सव जाई । जेहि बिधि प्रथम कथा मैं गाईं ॥

राम उदर देखउँ जग नाना । देखत बनइ न जाइ बखाना ॥

तहँ पुनि देखउँ राम सुजाना । मायापति कृपाल भगवाना ॥

करौ बिचार बहोरि बहोरि । मोह कलित ब्यापित मति मोरी ॥

उभय घरी महँ मैं सब देखा । भएउँ स्रमित मन मोह बिसेषा ॥

दो. - देखि कृपाल बिकल मोहि बिहँसे तब रघुबीर ।
बिहँसत ही मुख बाहेर आएउँ सुनु मतिधीर ॥
सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम ।
कोटि भाँति समुझावों मनु न लहइ बिस्राम ॥८२॥

देखि चरित यह सो प्रभुताई । समुझत देह दसा बिसराई ॥

धरनि परेउँ मुख आव न बाता । त्राहि त्राहि आरत जन त्राता ॥

प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी । निजमाया प्रभुता तव रोकी ।

कर सरोज प्रभु मम सिर धरऊ । दीनदयाल सकल दुख हरेऊ ॥

कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा । सेवक सुखद कृपा संदोहा ॥

प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारि । मन महँ होइ हरष अति भारी ॥

भगतबछलता प्रभु कै देखी । उपजो मम उर प्रीति बिसेषी ॥

सजल नयन पुलकित कर जोरी । कीन्हिउँ बहु बिधि बिनय बहोरी ॥

दो. - सुनि सप्रेम मम बानी देखि दीन निज दास ॥
बचन सुखद संभीर मृदु बोले रमानिवास ॥
काग भुसुंडि माँगु बर अति प्रसन मोहि जानि ।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोक्ष सकल सुख खानि ॥८३॥

ज्ञान विबेक बिरति बिज्ञाना । मुनि दुर्लभ गुन जे जग जाना ॥

आजु देउँ संसय नाहीं । माँगु जो तोहि भाव मन माहीं ॥

सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेउँ । मत अनुमान करन तब लागेउँ ॥
प्रभु कह देन सकल सुख सही । भगति आपनी देन न कही ॥
भगति हीन गुन सब सुख कैसे । लवन बिना बहु बिंजन जैसे ॥
भजनहीन सुख कवने काजा । अस बिचारि बोलेउँ खगराजा ॥
जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू । मोपर करहु कृपा अरु नेहू ॥
मन भावत बर माँगौं स्वामी । तुम्ह उदार उर अंतरजामी ॥

दो. - अविरल भगति बिसुद्ध तब स्रुति पुरान जो गाव ।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव ॥
भगत कल्पतरु प्रनतहित कृपासिंधु सुखधाम ॥
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम ॥८४॥

एवमस्तु कहि रघुकुलनायक । बोले बचन परम सुखदायक ॥
सुनु बायस तहँ सहज सयाना । काहे न माँगसि अस बरदाना ॥
सब सुख खानि भगति तैं मांगी । नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी ॥
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं । जे जप जोग अनल तन दहहीं ॥
रीझेउँ देखि तोरि चतुराई । मांगेहु भगति मोहि अति भाई ॥
सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरे । सब सुभ गुन बसिहहि उर तोरे ॥
भगति ज्ञान बिज्ञान बिरागा । जोग चरित्र रहस्य बिभागा ॥
जानब तैं सबहीं कर भेदा । मम प्रसाद नहिं साधन खेदा ॥

दो. - माया संभव भ्रम सब अब न ब्यापिहहिं तोहि ।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि ॥
मोहि भगत प्रिय संतत अस बिचारि सुनु काग ।
काय बचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग ॥८५॥

अब सुनु परम बिमल मम बानी । सत्य सुगम निगमादि बखानी ॥
निज सिद्धांत सुनावौं तोही । सुनि मन धरु सब तजि भजु मोही ॥
मम माया संभव संसारा । जीव चराचर बिचित्र प्रकारा ॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाए । सब तें अधिक मनुज मोहि भाए ॥
तिन्ह महँ द्विज महँ श्रुतिधारी । तिन महँ निगम धर्म अनुसारी ॥

तिन्ह मम बिरक्त पुनि ज्ञानी । ज्ञानिहुँ तें अति प्रिय बिज्ञानी ।
तिन्ह तें पुनि मोहि प्रिय निज दासा । जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ॥
पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं । मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं ॥
भगतिहीन बिरंचि किन होई । सब जीवहुँ सम प्रिय मोहि सोई ॥
भगतिवंत अति नीचउ मानी । मोहि प्रान प्रिय अति मम बानी ॥

दो. - सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग ।
श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग ॥८६॥

एक पिता के बिपुल कुमारा । होहिं पृथक गुन सील अचारा ॥
काउ पंडित कोउ तामस ज्ञाता । कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ॥
कोउ सर्वज्ञ धर्मरत कोई । सब पर पितहि प्रीति सब होई ॥
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा । सपनेहु जान न दूसर धर्मा ॥
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना । जद्यपि सो सब भाँति अयाना ॥
य हि बिधि जीव चराचर जेते । त्रिजग देव नर असुर समेते ॥
अखिल बिस्व यह मोर उपाया । सब पर मोहि बराबरि दाया ॥
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया । भजइ मोहि मम बच अरु काया ॥

सो. - सत्य कहौं लग तोहि सुचि सेवक मम प्रान प्रिय ।
अस विचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब ॥८७॥

कबहुँ काल नहिं ब्यापहि तोहीं । सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोहीं ॥।
प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ । तन पुलकित मन अति हरषाऊँ ॥
सो सुख जानइ मन अरु काना । नहिं रसना पहिं जाइ बखाना ॥
प्रभु सोभा सुख जानहि नयना । कहिं किमि सकहिं तिन्हहि नहिं बयाना ॥
बहु बिधि मोहि प्रबोधि सुख देई । लगे करन सिसु कौतुक तेई ॥
सजल नयन कछु मुख करि रूखा । बितइ मातु लागी अति भूखा ॥
देखि मातु आतुर उठि धाई । कहि मृदु बचन लिए उर लाई ॥
गोद राखि कराय पय पाना । रघुपति चरित ललित कर गाना ॥

दो. - जेहि सुख लागि पुरारि असुभ बेष कृत सिव सुखद।
अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन ॥

सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहु लहेउ ।
ते नहिं गनहि खगेस ब्रह्म सुखहि सज्जन सुमति ॥८८॥

मैं पुनि अवध रहेउँ कछु काला । देखेउँ बाल बिनोद रसाला ॥
राम प्रसाद भक्ति बर पाएउँ । प्रभु पद बंदि निजास्रम आएउँ ॥
तब तें मोहिं न ब्यापी माया । जब तें रघुनाथ अपनाया ॥
यह सब गुप्त चरित मैं गावा । हरि माया जिमि मोहि नचावा ॥
निज अनुभव अब कहौं खगेसा । बिनु हरि भगत न जाहि कलेसा ॥
राम कृपा बिनु सुनु खगराई । जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥
जाने बिनु न होइ परतीती । बिनु परतीति होइ नहिं प्रीति ॥
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई । जिमि खगपति जल कै चिकनाई ॥

सो. - बिनु गुर होई कि ज्ञान ज्ञान कि होइ विराग बिनु ।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ॥
कोउ बिस्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु ।
चलइ कि जल बिनु कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥८९॥

बिनु संतोष न काम नसाहिं । थल अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ॥
राम भजन बिनु मिटिहि कि कामा । थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥
बिनु बिज्ञान कि समता आवै । कोउ अवकास कि नभ बिनु पावै ॥
स्रद्धा बिना धर्म नहिं होई । बिनु महि गंध कि पावइ कोई ।
बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा । जल बिनु रस कि होइ संसारा ॥
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई । जिमि बिनु तेज न रूप गुसाईं ॥
निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा । परस कि होइ बिहीन समीरा ॥
कबनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा । बिनु हरि भजन न भव भय नासा ॥

दो. - बिनु बिस्वास भगति नहि तेहि बिनु द्रबहि न रामु ।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिस्रामु ॥

सो. - अब बिचारि मति धीर तजि कुतर्क संसय सकल ।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुन्दर सुखद ॥९०॥

बिज मति सरिस नाथ मैं गाई । प्रभु प्रताप महिमा खगराई ॥

कहेउँ न कछु करि जुगुति बिसेषी । यह सब मैं निज नयनहिं देखी ॥
महिमा नाम रूप गुन गाथा । सकल अमित अनंत रघुनाथा ॥
निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं । निगम सेष सिव पार न पावहिं ॥
तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता । नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता ॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा । तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा ॥
राम काम सत कोटि सुभग तन । दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन ॥
सक्र कोटि सरिस बिलासा । नभ सत कोटि अमित अवकासा ॥

दो. - मरुत कोटि सत बिपुल बल रबि सत कोटि प्रकास ।
ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास ॥
काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत ।
धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत ॥९१

प्रभु अगाध सत कोटि पताला । समन कोटि सत सरिस कराला ॥
तीरथ अमित कोटि सम पाबन । नाम अखिल अघ पूग नसावन ॥
हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा । सिंधु कोटि सत सम गंभीरा ॥
कामधेनु सत कोटि समाना । सकल कामदायक भगवाना ॥
सारद कोटि अमित चतुराई । बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई ॥
बिस्नु कोटि सब पालन करता । रुद्र कोटि सत सम संहरता ॥
धनद कोटि सत सम धनवाना । माया कोटि प्रपंच निधाना ॥
भार धरन सत मोटि अहीसा । निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ॥

छं. - निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै ।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै ॥
यहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीस हरिहि बखानहीं ।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं ॥

सो. - भाववस्य भगवान सुखनिधान करुनाभवन ।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीतारमन ॥९२॥

सुनि भुसुंडि के बचन सुहाए । हरषित खगपति पंख फुलाए ॥
नयन नीर मन अति हरषाना । श्री रघुपति प्रताप उर आना ॥

पाछिल मोह समुझि पछिताना । ब्रह्म अनादि मनुज करि माना ॥
पुनि पुनि काग चरन सिरु नावा । जानि राम सम प्रेम बढ़ावा ॥
गुर बिनु भवनिधि तरइ न कोई । जौं बिरंचि संकर सम होई ॥
संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता । दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता ॥
तब सरूप गारुड़ि रघुनायक । मोहि जिआएउ जन सुखदायक ॥
तब प्रसाद मम मोह नसाना । राम रहस्य अनूपम जाना ॥

दो. - ताहि प्रसंसि बिबिध बिधि सीस नाइ कर जोरि ।
बचन बिनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुड़ बहोरि ॥
प्रभु अपने अविवेक तें बूझौं स्वामी तोहि ।
कृपासिंधु सादर कहहु जानि दास निज मोहि ॥९३॥

तुम्ह सर्वज्ञ तज्ञ तमपारा । सुमति सुसील सरल आचारा ॥
ज्ञान बिरति बिज्ञान निवासा । रघुनायक के तुम्ह प्रिय दासा ॥
कारन कबन देह यह पाई । तात सकल मोहि कहहु बुझाई ॥
राम चरित सर सुन्दर स्वामी । पाएहु कहाँ कहहु नभगामी ॥
नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं । महा प्रलयहुँ नास तब नाहीं ॥
मृषा बचन नहिं ईस्वर कहई । सोउ मोरे मन संसय अहई ॥
अग जग जीव नाग नर देवा । नाथ सकल जगु काल कलेवा ॥
अंडकटाह अमित लयकारी । काल सदा दुरतिक्रम भारी ॥

सो. - तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन ।
मोहि सो कहहु कृपाल ज्ञान प्रभाव कि जोग बल ॥

दो. - प्रभु तव आस्रम आएँ मोर मोह भ्रम भाग ।
कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग ॥९४॥

गरुड़ गिरा सुनि हरषेउ कागा । बोलेउ उमा परम अनुरागा ॥
धन्य धन्य तव मति उरगारी । प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी ॥
सुबि तब प्रस्न सप्रेम सुहाई । बहुत जनम कै सुधि मोहि आई ॥
सब निज कथा कहौं मैं गाई । तात सुनहु सादर मन लाई ॥
जप तप मख सब दम ब्रत दाना । बिरत बिबेक जोग बिज्ञाना ॥

सब कर फलु रघुपति पद प्रेमा । तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा ॥
येहि तन राम भगति मैं पाई । ता तें मोहि ममता अधिकाई ॥
जेहि तें कछु निज स्वारथ होई । तेहि पर ममता कर सब कोई ॥

सो. - पन्नगारि असि नीति श्रुति संमत सज्जन कहहिं ।
अति नीचहु सब प्रीति करिअ जानि निज परम हित ॥
पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर ॥
कृमि पालइ सब कोइ परम अपावन प्रान सम ॥९५॥

स्वारथ साँच जीव कहुँ येहा । मन क्रम बचन राम पद नेहा ॥
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा । जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा ॥
राम बिमुख लहि बिधि सम देही । कबि कोबिद न प्रसंसहि तेही ॥
राम भगति येहि तन उर जामी । ता तें मोहि परम प्रिय स्वामी ॥
तजौ न तनु निज इच्छा मरना । तनु बिनु बेद भजनु नहिं बरना ॥
प्रथम मोह मोहि बहुत बिगोबा । राम बिमुख सुख कबहुँ न सोवा ॥
नाना जनम करम पुनि नाना । किए जोग जप तप मख दाना ॥
कबन जोनि जनमेउँ जहँ नाहीं । मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं ॥
देखउँ करि सब करम गोसाई । सुख न भएउँ अबहिं की नाई ॥
सुधि मोहि नाथ जनम बहु केरी । सिव प्रसाद मति मोह न घेरी ॥

दो. - प्रथम जनम के चरित अब कहौं सुनहु बिहँगेस ।
सुनि प्रभु पद रति उपजइ जातें मिटहिं कलेस ॥
पूरुव कल्प एक प्रभु जुग कलियुग मलमूल ।
नर अरु नारि अधर्म रत सकल निगम प्रतिकूल ॥९६॥

तेहि कलियुग कोसलपुर जाई । जन्मत भएउँ सूद्र तनु पाई ॥
सिव सेबक मद क्रम अरु बानी । आन देव निंदक अभिमानी ॥
धन मदमत्त काम बाचाला । उग्र बुद्धि उर दंभ बिसाला ॥
जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी । तदपि न कछु महिमा तब जानी ॥
अब जाना मैं अवध प्रभावा । निगमागम पुरान अस गावा ॥
कवनेहु जनम अवध बस सोई । राम परायन सो परि होई ॥

अवध प्रभाव जान तब प्रानी । जब उर बसहिं रामु धनुपानी ॥
सो कलिकाल कठिन उरगारी । पाप परायन सब नर नारी ॥

दो. - कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए मदग्रंथ ।
दंमिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ ॥
भए लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ कर्म ।
सुनु हरिजन ज्ञाननिधि कहौं कछुक कलि धर्म ॥९७॥

बरन धर्म नहिं आस्रम चारी । श्रुति बिरोध रत सब नर नारी ॥
द्विज श्रुति बेचक सूप प्रजासन । कोउ नहिं मान निगम अनुसासन ॥
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा । पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई । ता कहुँ संत कहइ सब कोई ॥
सोई सयान जो पर धन हारी । जो कर दंभ सो बड़ आचारी ॥
जो कह झूँठ मसखरी जाना । कलियुग सोइ गुनबंत बखाना ॥
निराचर जो श्रुति पथ त्यागी । कलिजुग सोइ ज्ञानी सो बिरागी ॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला । सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥

दो. - असुभ बेष भूपन धरे भच्छाभच्छ जे खाहिं ।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्यते कलिजुग माहि ॥

सो. - जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ ।
मन क्रम वचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ ॥९८॥

नारि बिबस नर सकल गोसाई । नाचहि नट भर्कट की नाई ।
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना । मेलि जनेऊ लेहि कुदाना ॥
सब नर काम लोभ रत क्रोधी । देब बिप्र श्रुति संत बिरोधी ॥
गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी । भजहिं नारि पर पुरुष अभागी ॥
सौभागिनी बिभूषन हीना । विधवन्ह के सिंगार नवीना ॥
गुर सिष बधिर अंध का लेखा । एक न सुनइ एक नहिं देखा ॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई । सो गुर घोर नरक महुँ परई ॥
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं । उदर भरइ सोइ धरम सिखावहिं ॥

दो. - ब्रह्मग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात ।
बादहि सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह तें कछु घाटि ।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रवर आँखि देखावहिं डाँटि ॥९९॥

पर त्रिय लंपट कपट सयाने । मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेइ अभेदबादी ग्यानी नर । देखा मैं चरित्र कलिजुग कर ॥
आपु गए अरु तिन्हहूँ घालहिं । जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहि ॥
कल्प कल्प भरि एक एक नरका । परहिं जे दूषहि श्रुति करि तरका ॥
जे बरनाधम तेलि कुम्हारा । स्वपच किरात कोल कलवारा ॥
नारि मुई एह संपति नासी । मूड़ मुड़ाइ होहि संन्यासी ॥
ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं । उभय लोक निज हाथ नसावहिं ॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी । निराचार सठ वृषली स्वामी ॥
सूद्र करहि जप तप ब्रत नाना । बैठि बरासन कहहि पुराना ॥
सब नर कल्पित करहि अचारा । जाइ न बरनि अनीति अपारा ॥

दो. - भए बरनसंकर कलि भिन्न सेतु सब लोग ।
करहि पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग ॥
श्रुति संमत हरि भगत पथ संजुत बिरति बिबेक ।
तेहिं न चलहिं नर मोहबस कल्पहिं पंथ अनेक ॥१००॥

छं. - बहु दाम सँवारहि धाम जति । बिषया हरि लीन्हिन रही बिरती ॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही । कलि कौतुक तात न जात कही ॥
कुलवंति निकारहि नारि सती । गृह आनहिं चेरि निबेरि गती ॥
सुत माँनहि मातु पिता तब लौं । अबलानन दीख नहीं जब लौं ॥
ससुरारि पिआरि लगी जब तें । रिपु रूप कुटुंब भए तब तें ॥
नृप पाप परायन धर्म नहीं । करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं ॥
धनवंत कुलीन मलीन अपी । द्विजचिन्ह जनेउ उघार तपी ॥
नहि मान पुरान न बेदहि जो । हरि सेवक संत सही कलि सो ॥
कबिबृंद उदार दुनी न सुनी । गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी ॥
कलि बारहि बार दुकाल परै । बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै ॥

दो. - सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाखंड ।
मान मोह मायादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मंड ॥
तामस धर्म करहिं नर जप तप मख ब्रत दान ॥
देव न वरषहिं धरनी पर बये न जामहिं धान ॥१०१॥

छं. - अबला कच भूषन भूरि छुधा । धनहीन दुखी ममता बहुधा ॥
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्मरता । मति थोरि कठोरि न कोमलता ॥
नर पीड़ित रोग न भोग कहीं । अभिमान विरोध अकारन हीं ॥
लघु जीवन संवतु पंचदसा । कलपांत न नास गुमानु असा ॥
कलिकाल बिहाल किए मनुजा । नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा ॥
नहिं तोष विचार न सीतलता । सब जाति कुजाति भए मँगता ॥
इरिषा परुषाच्छर लोलुपता । भरि पूरि रही समता बिगता ॥
सब लोग बियोग बिसोक हए । बरनाश्रम धर्म अचार गए ॥
दम दान दया नहिं जानपनी । जड़ता परबंचनताति घनी ॥
तनुपोषक नारि नरा सगरे । परनिन्दक जे जग मो बगरे ॥

दो. - सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार ।
गुनौ बहुत कलियुग कर बिनु प्रयास निसतार ॥
कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग ।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम तें पावहिं लोग ॥१०२॥

कृतजुग सब जोगी बिज्ञानी । करि हरिध्यान तरहि भव प्रानी ॥
त्रेता बिबिध जज्ञ नर करहीं । प्रभुहिं समर्पि करम भव तरहीं ॥
द्वापर करि रघुपति पद पूजा । नर भव तरहिं उपाउ न दूजा ॥
कलियुग केवल हरि गुन गाहा । गावत नर पावहिं भव थाहा ॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना । एक अधार राम गुन गाना ॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि । प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि ॥
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं । नामप्रताप प्रकट कलि नाहीं ।
कलि कर एक पुनीत प्रतापा । मानस पुन्य होहि नहिं पापा ॥

दो. - कलिगुज सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास ।
गाइ राम गुन गन मिल भव तर बिनहिं प्रयास ॥
प्रकट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान ।
जेन केन बिधि दीन्हे दान करइ कल्यान ॥१०३॥

नित जुग धर्म होहिं सब केरे । हृदयँ राम माया के प्रेरे ॥
सुद्ध सत्व समता बिज्ञाना । कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना ॥
सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा । सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा ॥
बहु रज स्वल्प सत्ब कछु तामस । द्वापर धर्म हरष भय मानस ॥
तामस बहुत रजोगुन थोरा । कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा ॥
बुध जुगधर्म जानि मन माहीं । तजि अधर्म रति धर्म कराहीं ॥
काल धर्म नहिं ब्यापहि ताही । रघुपति चरन प्रीति अति जाही ॥
नट कृत बिकट कपट खगराया । नटसेवकहिं न ब्यापइ माया ॥

दो. - हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं ।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं ॥
तेहि कलि काल बरष बहु बसेउँ अबध बिहँगेस ।
परेउ दुकाल बिपतिबस तब मैं गएउँ बिदेस ॥१०४॥

गएउँ उजैनी सुनु उरगारी । दीन मलीन दरिद्र दुखारी ॥
गए काल कछु संपति पाई । तहँ पुनि करौं संभु सेवकाई ॥
बिप्र एक बैदिक सिव पूजा । करइ सदा तेहि काजु न दूजा ॥
परम साधु परमारथ बिंदक । संभु उपासक नहिं हरि निंदक ॥
तेहि सेवौं मैं कपट समेता । द्विज दयाल अति नीति निकेता ॥
बाहिज नम्र देखि मोहि साईं । बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं ॥
संभु मंत्र मोहि द्विजबर दीन्हा । सुभ उपदेस बिबिध बिधि कीन्हा ॥
जपौं मंत्र सिव मंदिर जाई । हृदय दंभ अहमिति अधिकाई ॥

दो. - मैं खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह ।
हरिजन द्विज देखे जरौं करौं बिस्नु कर द्रोह ॥

सो. - गुर नित मोहिं प्रबोध दुखित देखि आचरन मम ।
मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति की भावई ॥१०५॥

एक बार गुर लीन्ह बोलाई । मोहि नीति बहु भाँति सिखाई ॥
सिव सेवा कै फल सुत सोई । अबिरल भगति राम पद होई ॥
रामहि भजहिं तात सिव धाता । नर पावँर कै केतिक बाता ॥
जासु चरन अज सिव अनुरागी । तासु द्रोह सुख चहसि अभागी ॥
हर कहुँ हरिसेवक गुर कहेऊ । सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ ॥
अधम जाति मैं बिद्या पाए । भएउ जथा अहि दूध पिआए ॥
मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती । गुर कर द्रोह करौं दिनु राती ॥
अतिदयाल गुरु स्वल्प न क्रोधा । पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा ॥
जेहि ते नीच बड़ाई पावा । सो प्रथमहि हित ताहि नसावा ॥
धूम अनल संभव सुनु भाई । तेहि सुझाव घन पदवी पाई ॥
रज मग परी निरादर रहई । सब कर पद प्रहार नित सहई ॥
मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई । पुनि नृप नयन किंरीटन्हि परई ॥
सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा । बुध नहि करहिं अधम कर संगा ॥
कबि कोबिद गावहिं असि नीती । खल सन कलह न भल नहिं प्रीती ॥
उदासीन नित रहिअ गोसाईं । खल परिहरिअ स्वान की नाईं ॥
मैं खल हृदय कपट कुटिलाई । गुर हित कहहिं न मोहि सुहाई ॥

दो. - एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम
गुर आएउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम ॥
सो दयाल नहिं कहेहु कछु उर न रोष लव लेस ।
अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस ॥१०६॥

मंदिर माँझ भई नभबानी । रे हतभाग्य अज्ञ अभिमानी ॥
जद्यपि तव गुर कें नहिं क्रोधा । अति कृपाल चित सम्यक बोधा ॥
तदपि साप सठ देहौं तोही । नीति बिरोध सोहाइ न मोही ॥
जौं नहि दंड करौं तोरा । भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा ॥
जे सठ गुर सन इरिषा करहीं । रौरव नरक कोटि जुग परहीं ॥

त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा । अयुत जन्म भरि पाबहिं पीरा ॥
बैठि रहेसि अजगर इव पापी । सर्प होहि खल मल मति ब्यापी ॥
महा बिटप कोटर महुँ जाई । रहु अधमाधम अधगति पाई ॥

दो. - हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव स्राप
कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप ॥
करि दंडवत सप्रेम द्विज सिव सनमुख कर जोरि ।
विनय करत गदगद गिरा समुझि घोर गति मोर ॥१०७॥

नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं । बिभुं ब्यापकं ब्रह्म बेदस्वरूपं ॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं । चिदाकाशमाकाशवासं भजेहं ॥
निराकारमोंकारमूल तुरीय । गिराज्ञानगोतीतमीशं गिरीशं ॥
करालं महाकालकालं कृपालं । गुणागार संसारपारं नतोहं ॥
तुषाराद्रिसंकारगौरं गभीरं । मनोभूतकोटिप्रभा श्री शरीरं ॥
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चारु गंगा । लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा ॥
चलतकुंडलं शुभनेत्रं विशालं । प्रसन्ननानं नीलकंठं दयालं ॥
मृगाधीशचर्म्मांबरं मुंडमालं । प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ॥
प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं । अखंड अजं भानुकोटिप्रकाशं ॥
त्रय:शूल निर्मूलनं शूलपाणिम् । भजेहं भवानीपतिं भावगम्यं ॥
कलातीतकल्याणकल्पांतकारी । सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी ॥
चिदानंदसंदोहमोहापहारी । प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ॥
न तावत्सुखं शांति संतापनाशं । प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिबासं ॥
न जानामि योगं जपं नैव पूजां । नतोहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं ॥
जराजन्मदु:खौघतातप्यमानं । प्रभो पाहि आपन्न मामीश शंभो ॥

श्ले. - रुद्राष्टकमिदं प्रोक्त विप्रेण हरतोषये ।
ये पठति नरा भक्त्या तेषां शंभु: प्रसीदति ॥

दो. - सुनि बिनती सर्बज्ञ सिव देखि बिप्र अनुरागु ।
पुनि मंदिर नभ बानी भइ द्विजवर बर माँगु ॥
जौं प्रसन्न प्रभु मोपर नाथ दीन पर नेहु ।

निज पद भगति देइ प्रभु पुनि दूसर बर देहु ॥
तव मायाबस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान ।
तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपासिंधु भगवान ॥
संकर दीन दयाल अब येहि पर होहु कृपाल ।
स्राप अनुग्रह होइ जेहि नाथ थोरे हीं काल ॥१०८॥

येहि कर होइ परम कल्याना । सोइ करहु अब कृपानिधाना ॥
बिप्र गिरा सुनि परहित सानी । एवमस्तु इति भै नभ बानी ॥
जदपि कीन्ह येहि दारुन पापा । मैं पुनि दीन्ह क्रोध करि स्रापा ॥
तदपि तुम्हारि साधुता देखी । करिहौं येहि पर कृपा बिसेषी ॥
छमासील जे पर उपकारी । ते द्विज मम प्रिय जथा खरारी ॥
मोर साप द्विज ब्यर्थ न जाइहि । जन्म सहस्र अवसि यह पाइहि ॥
जन्मत मरत दुसह दुख होई । एहि स्वल्पउ नहिं ब्यापिहि सोई ॥
कवनेहु जन्म मिटिहि नहिं ज्ञाना । सुनहि सूद्र मम बचन प्रवाना ॥
रघुपति पुरी जन्म तव भएऊ । पुनि तैं मम सेवा मन दएऊ ॥
पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरे । राम भगति उपजिहि उर तोरें ॥
सुनु मम बचन सत्य अब भाई । हरि तोषन ब्रत द्विज सेवकाई ॥
अब जनि करहि बिप्र अपमाना । जानेसु संत अनंत समाना ॥
इद्रकुलिस मम सूल बिसाला । कालदंड हरिचक्र कराला ॥
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई । बिप्र द्रोह पाचक सो जरई ॥
अस बिबेक राखेहु मन माहीं । तुम्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
औरी एक आसिषा मोरी । अप्रतिहत गति होइहि तोरी ॥

दो. - सुनि सिव बचन हरषि गुर एवमस्तु इति भाषि ।
मोहि प्रबोधि गएउ गृह संभु चरन उर राखि ॥
प्रेरित काल बिंधि गिरि जाइ भएउँ मैं ब्याल ॥
पुनि प्रयास बिनु सो तनु तजेउँ गए कछु काल ॥
जोइ तनु धरौं तजौं पुनि अनायास हरिजान ।
जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान ॥

सिव राखी श्रुति नीति अरु मैं नहिं पाव कलेस ॥
येहि बिधि धरेउँ बिबिध तनु ज्ञान न गएउ खगेस ॥१०९॥

त्रिजग देव नर जोइ तन धरऊँ । तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ ॥
एक सूल मोहि बिसर न काऊ । गुर कर कोमल सील सुभाऊ ॥
चरम देह द्विज कै मैं पाई । सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई ॥
खेलौं तहूँ बालकन्ह मीला । करौं सकल रघुनायक लीला ॥
प्रौढ़ भए मोहिं पिता पढ़ावा । समुझों सुनों गुनों नहिं भावा ॥
मन तें सकल बासना भागी । केवल राम चरन लय लागी ॥
कहु खगेस अस कवन अभागी । खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी ॥
प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई । हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई ॥
भए कालबस जन पितु माता । मैं बन गएउँ भजन जनत्राता ॥
जहँ जहँ बिपिन मुनीस्वर पाबौं । आस्रम जाइ जाइ सिरु नावौं ॥
बूझौं तिन्हहि राम गुन गाहा । कहहिं सुनौं हरषित खगनाहा ॥
सुनत फिरौं हरि गुन अनुबादा । अब्याहत गति संभु प्रसादा ॥
छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी । एक लालसा उर अति बाढ़ी ॥
राम चरन बारिज जब देखौं । तब निज जन्म सुफल करि लेखौं ॥
जेहि पूछौं सोइ मुनि अस कहई । ईस्वर सर्व भूतमय अहई ॥
निर्गुन मत नहिं मोहि सुहाई । सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई ॥

दो. - गुर के बचन सुरति करि राम चरन मनु लाग ।
रघुपति जस गावत फिरौं छन छन नव अनुराग ॥
मेरु सिखर बट छायाँ मुनि लोमस आसीन ।
देखि चरन सिर नाएउँ बचन कहेउँ अति दीन ॥
सुनि मम बचन बिनीत मृदु मुनि कृपाल खगराज ।
मोहि सादर पूछत भए द्विज आयहु केहि काज ॥
तब मैं कहा कृपानिधि तुम्ह सर्वज्ञ सुजान ।
सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान ॥११०॥

तब मनीस रघुपति गुन गाथा । कहे कछुक सादर खगनाथा ॥

ब्रह्मज्ञान रत मुनि बिज्ञानी । मोहि परम अधिकारी जानी ॥
लागे करन ब्रह्म उपदेसा ॥ अज अद्वैत अगुन हृदयेसा ॥
अकल अनीह अनाम अरूपा । अनुभवगम्य अखंड अनूपा ॥
मन गोतीत अमल अबिनासी । निर्बिकार निरवधि सुखरासी ॥
सो तैं ताहि नहिं भेदा । बारि बीचि इव गावहि वेदा ॥
बिबिध भाँति मुनि समुझाया । निर्गुन मत मम हृदय न आवा ॥
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा । सगुन उपासन कहहु मुनीसा ॥
राम भगति जल मम मन मीना । किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना ॥
सो उपदेस कहहु करि दाया । निज नयनन्हि देखौं रघुराया ॥
भरि लोचन बिलोकि अवधेसा । तब सुनिहौं निर्गुन उपदेसा ॥
मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा । खंडि सगुन मत अगुन निरूपा ॥
तब मैं निर्गुन मत करि दूरी । सगुन निरूपौं करि हठ भूरी ॥
उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा । मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा ॥
सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किए । उपज क्रोध ज्ञानिन्ह के हिए ॥
अति संघरषन कर जो कोई । अनल प्रगट चंदन तें होई ॥

दो. - बारंबार सकोप मुनि करइ निरूपन ज्ञान ।
मैं अपने मन बैठ तब करौं बिबिध अनुमान ॥
क्रोध कि द्वैत बुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अज्ञान ।
मायाबस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान ॥१११॥

कबहुँ कि दुख सब कर हित ताके । तेहि पुनि दरिद्र परसमनि जाके ॥
परद्रोही की होहि निसंका । कामी पुनि कि रहहि अकलंका ॥
बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हे । कर्म कि होहिं स्वरूपहि चीन्हे ॥
काहू सुमति कि खल सँग जामी । सुभगति पाव कि पर त्रिय गामी ॥
भव कि परहिं परमातम बिंदक । सुखी कि होहिं कबहुँ हरि निंदक ॥
राजु कि रहइ नीति बिनु जाने । अप कि रहहिं हरि चरित बखाने ॥
पावन जस कि पुन्य बिनु होई । बिनु अघ अजसकि पाइव कोई ॥
लाभु कि कछु हरि भगति समाना । जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना ॥

हानि कि जग येहि सम कछु भाई । भजिअ न रामहिं नर तनुपाई ॥
अघ की बिनु तामस कछु आना । धर्म कि दया सरिस हरिजाना ॥
येहि बिधि अमित जुगुति मन गुनेऊँ । मुनि उपदेस न सादर सुनेऊँ ॥
पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा । तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा ॥
मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि । उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि ॥
सत्य बचन बिस्वास न करहीं । बायस इव सब हीं तें हरही ॥
सठ स्वपच्छ तब हृदय बिसाला । सपदि होहि पच्छी चंडाला ॥
लीन्हि साप मैं सीस चढ़ाई । नहिं कछु भय न दीनता आई ॥

दो. - तुरत भएउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ ।
सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ ॥
उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहि विरोध ॥११२॥

सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन । उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन ॥
कृपासिंधु मुनि मति करि भोरी । लीन्ही प्रेम परिच्छा मोरी ॥
मन बच क्रम मोहि निज जन जाना । मुनि मति पुनि फेरी भगवाना ॥
रिषि मम सहन सीलता देखी । राम चरन बिस्वास बिसेषी ॥
अति बिसमय पुनि पुनि पछताई । सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई ॥
मम परितोष बिबिध बिधि कीन्हा । हरषित राममंत्र तब दीन्हा ॥
बालक रूप राम कर ध्याना । कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना ॥
सुन्दर सुखद मोहि अति भावा । सो प्रथमहि मैं तुम्हहि सुनावा ॥
मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा । रामचरित मानस तब भाखा ॥
सादर मोहि यह कथा सुनाई । पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई ॥
रामचरित सर गुप्त सुहावा । संभु प्रसाद तात मैं पावा ॥
तोहि निज भगत राम कर जानी । ता ते मैं सब कहेउँ बखानी ॥
राम भगति जिन्ह के उर नाहीं । कबहुँ न तात कहिय तिन्ह पाहीं ॥
मुनि मोहि बिबिध भाँति समुझाया । मैं सप्रेम मुनि पद सिरु नावा ॥
निज कर कमल परसि मम सीसा । हरषित आसिष दीन्हि मुनीसा ॥

राम भगति अविरल उर तोरे । बसिहि सदा प्रसाद अब मोरे ॥

दो. - सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान ।
कामरूप इच्छामरन ग्यान बिराग निधान ॥
जेहि आश्रम तुम्ह बसब मुनि सुमिरत श्री भगवंत ।
ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत ॥११३॥

काल करम गुन दोष सुभाऊ । कछु दुख तुम्हहि न ब्यापिहिकाऊ ॥
रामरहस्य ललित बिधि नाना । गुप्त प्रगट इतिहास पुराना ॥
बिनु स्रम तुम्ह जानब सब सोऊ । नित नव नेह राम पइ होऊ ॥
जो इच्छा करिहहु मन माहीं । प्रभु प्रसाद कछु दुरलभ नाहीं ॥
सुनि मुनि आसिष सुनु मतिधीरा । ब्रह्मगिरा भइ गगन गंभीरा ॥
एवमस्तु तब बच मुनि ग्यानी । यह मन भगत कर्म मन बानी ॥
सुनि नभ गिरा हरष मोहि भएऊ । प्रेम मगन सब संसय गएऊ ॥
करि बिनती मुनि आयसु पाई । पद सरोज पुनि पुनि सिरु नाई ॥
हरष सहित येहि आस्रम आएउँ । प्रभु प्रसाद दुरलभ बर पाएउँ ॥
इहाँ बसत मोहि सुनु खगईसा । बीते कलप सात अरु बीसा ॥
करौं सदा रघुपति गुन गाना । सादर सुनहिं बिहंग सुजाना ॥
जब जब अवधपुरी रघुबीरा । धरहिं भगत हित मनुज सरीरा ॥
तब तब जाइ रामपुर रहऊँ । सिसु लीला बिलोकि सुख लहऊँ ॥
पुनि उर राखि राम सिसुरूपा । निज आसन आवौं खगभूपा ॥
कथा सकल मैं तुम्हहिं सुनाई । काग देह जेहि कारन पाई ॥
कहेउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी । राम भगति महिमा अति भारी ॥

दो. - ता तें यह तन मोहिं प्रिय भएउ राम पद नेह ।
निज प्रभु दरसन पाएउँ गएउ सकल संदेह ॥
भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्ह महारिषि स्राप ।
मुनि दुर्लभ बर पाएउँ देखहु भजन प्रताप ॥११४॥

जे असि भगति जानि परिहरहीं । केबल ज्ञान हेतु श्रम करहीं ॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी । खोजत आकु फिरहि पय लागी ॥

सुनु खगेस हरि भगति बिहाई । जे सुख चाहहिं आन उपाई ॥
ते सठ महासिंधु बिनु तरनी । पैरि पार चाहहिं जड़ करनी ॥
सुनि भुसुंडि के बचन भवानी । बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी ॥
तब प्रसाद प्रभु मम उर माहीं । संसय सोक मोह भ्रम नाहीं ॥
सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा । तुम्हरी कृपा लहेउ बिश्रामा ॥
एक बात प्रभु पूछौ तोही । कहहुँ बुझाइ कृपानिधि मोही ॥
कहहि संत मुनि बेद पुराना । नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना ॥
सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं । नहिं आदरेहु भगति की नाईं ॥
ज्ञानहि भगतिहि अंतर केता । सकल कहहु प्रभु कृपानिकेता ॥
सुनि उरगारिबचन सुख नाना । सादर बोलेउ काग सुजाना ॥
भगतिहि ज्ञानहि नहिं कछु भेदा । उभय हरहि भव संभव खेदा ॥
नाथ मुनीस कहहि कछु अंतर । सावधान सो सुनु बिहंगबर ॥
ज्ञान बिराग जोग बिग्याना । ये सब पुरुष सुनहु हरिजाना ॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती । अबला अबल सहज जड़ जाती ॥

दो. - पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर ।
न तु कामी विषयाबस बिमुख जो पद रघुबीर ॥

सो. - सोउ मुनि ज्ञान निधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि ।
बिकल होहि हरिजान नारि बिष्नु माया प्रकट ॥११५॥

इहाँ न पक्षपात कछु राखौं । बेद पुरान संत मत भाषउँ ॥
मोह न नारि नारि के रूपा । पन्नगारि यह रीति अनूपा ॥
माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ । नारि बर्ग जानैं सब कोऊ ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पियारी । माया खलु नर्त्तकी बिचारी ॥
भगतिहिं सानुकूल रघुराया । ता तें तेहि डरपति अति माया ॥
राम भगति निरुपम निरुपाधी । बसइ जासु उर सदा अबाधी ॥
तेहि बिलोकि माया सकुचाई । करि न सकइ कछु निज प्रमुताई ॥
अस बिचारि जे मुनि बिज्ञानी । जाचहि भगति सकल सुख खानी ॥

दो. - यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोई ।
जाने ते रघुपति कृपा सपनेहुँ मोह न होइ ॥
औरो ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन ।
जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अबिछीन ॥११६॥

सुनहु तात यह अकथ कहानी । समुझत बनइ न जाइ बखानी ॥
ईश्वर अंस जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
सो माया बस भएउ गोसाईं । बंध्यो कीर मर्कट की नाईं ॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई । जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥
तब ते जीव भएउ संसारी । छूट न ग्रथि न होइ सुखारी ॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई । छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥
जीव हृदय तम मोह बिसेषी । ग्रंथि छूटि किमि परइ न देखी ॥
अस संयोग ईस जब करई । तबहु कदाचित सो निरुअरई
सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई । जौं हरि कृपा हृदयँ बस आई ॥
जप तप ब्रत जम नियम अपारा । जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा ॥
ते तृण हरित चरइ जब गाई । भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई ॥
जोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा । निर्मल मन अहीर निज दासा ॥
परम धर्ममय पय दुहि भाई । अबटइ अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब छमा जुड़ावै । धृति सम जावनु देइ जमावै ॥
मुदिता मथइ लेइ नवनीता । बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ॥

दो. - जोग अगिनि करि प्रकट तब कर्म सुभासुभ लाइ ।
बुद्धि सिरावइ ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ॥
तब बिज्ञानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ ।
चित्त दिआ भरि धरइ दृढ़ समता दिअटि बनाइ ॥
तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास ते काढ़ि ।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करइ सुगाढ़ि ॥

सो. - येहि बिधि लेसइ दीप तेजरासि बिज्ञानमय ।
जातहि तासु समीप जरहि मदादिक सलभ सब ॥११७॥

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा । दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा ॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा । तब भव मूल भेद भ्रम नासा ॥
प्रबल अबिद्या कर परिवारा । मोह आदि तम मिटइ अपारा ॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उजियारा । उर गृह बैठि ग्रंथि निरुआरा ॥
छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई । तौ यह जीव कृतारथ होई ॥
छोरत ग्रंथि जानि खगराया । बिघ्न अनेक करइ तब माया ॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई । बुद्धिहि लोभ दिखावहि आई ॥
कल बल छल करि जाहिं समीपा । अंचल बात बुझावहि दीपा ॥
होई बुद्धि जो परम सयानी । तिन्ह तनु चितवन अनहित जानी ॥
जौं तेहि बिघन बुद्धि नहिं बाधी । तौ बहोरि सुर करहि उपाधी ॥
इंद्री द्वार झरोखा नाना । तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ॥
आवत देखहिं बिषय बयारी । ते हठि देहि कपाट उघारी ॥
जब सो अभंजन उर गृह जाई । तबहि दीप बिज्ञान बुझाई ॥
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा । बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा ॥
इंद्रिन्ह सुरन्ह न ज्ञान सोहाई । विषय भोग पर प्रीति सदाई ॥
विषय समीर बुद्धि कृत भोरी । तेहि बिधि दीप को बार बहोरी ॥

दो. - तब फिरि जीब बिबिध बिधि पाबइ संसृति क्लेस ।
हरिमाया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहंगेस ॥
कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक ।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक ॥११८॥

ग्यानपथ कृपान कै धारा । परत खगेस होइ नहिं बारा ॥
जौं निर्बिघ्न पंथ निर्बहई । सो कैवल्य परमपद लहई ॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद । संत पुरान निगम आगम बद ॥
राम भजत सोइ सुकृति गुसाईं । अनइच्छित आवइ बरिआईं ॥
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई । कोटि भाँति कोउ करइ उपाई ॥
तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई । रहि न सकइ हरि भगति बिहाई ॥।
अस बिचारि हरि भगत सयाने । मुकुति निरादर भगति लुभाने ॥

भगति करत बिनु जतन प्रयासा । संसृति मूल अबिद्या नासा ॥
भोजन करिअ तृप्ति हित लागी । जिमि सो असन पचइ जठरागी ॥
असि हरि भगति सुगम सुखदाई । को अस मूढ़ न जाहि सुहाई ॥

दो. - सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि ।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि ॥
जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य ।
अस समरथ रघुनायकहिं भजहिं जीव ते धन्य ॥११९॥

कहेउँ ज्ञान सिद्धांत बुझाई । सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई ॥
राम भगति चिंतामनि सुन्दर । बसइ गरुड़ जाके उर अंतर ॥
परम प्रकास रूप दिन राती । नहिं कछु चहिअ दिया घृत बाती ॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा । लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ॥
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई । हारहिं सकल सलभ समुदाई ॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं । बसइ भगति जाके उर माहीं ॥
गरल सुधा सम अरि हित होई । तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ॥
ब्यापहि मानस रोग न भारी । जिन्हके बस सब जीव दुखारी ॥
राम भगति मनि उर बस जाकें । दुख लव लेस न सपनेहुँ ताकें ॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं । जे मनि लागि सुजतन कराहीं ॥
सो मनि जदपि प्रकट जग अहई । राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई ॥
सुगम उपाय पाइबे केरे । नर हतभाग्य देहिं भटभेरे ॥
पावन पर्वत बेद पुराना । राम कथा रुचिराकर नाना ॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी । ज्ञान बिराग नयन उरगारी ॥
भाव सहित खोजइ जो प्रानी । पाव भगति मनि सब सुखखानी ॥
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा । राम तें अधिक राम कर दासा ॥
राम सिंधु घन सज्जन धीरा । चंदन तरु हरि संत समीरा ॥
सब कर फल हरि भगति सुहाई । सो बिनु संत न काहू पाई ॥
अस बिचारि जोई कर सतसंगा । राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा ॥

दो. - ब्रह्म पयोनिधि मंदर ज्ञान संत सुर आहिं ॥
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहि ।
बिरति चर्म असि ज्ञान मद्र लोभ मोह रिपु मारि ।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि ॥१२०॥

पुनि सप्रेम बोलउ खगराऊ । जौं कृपाल मोहि ऊपर भाऊ ॥
नाथ मोहिं -निज सेवक जानी । सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी ॥
प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा । सब ते दुर्लभ कवन सरीरा ॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी । सोउ संछेपहि कहहु बिचारी ॥
संत असंत मरम तुम्ह जानउ ।तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु ॥
कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला । कहहु कवन अघ परम कराला ॥
मानस रोग कहहु समुझाई । तुम्ह सर्वज्ञ कृपा अधिकाई ॥
तात सुनहु सादर अति प्रीती । मैं संछेप कहौं यह नीती ॥
नर तन सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत जेही ॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी । ज्ञान बिराग भगति सुभ देनी ॥
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर । होहि बिषयरत मंद मंदतर ॥
काँचु किरिच बदले ते लेही । कर तें डारि परसमनि देहीं ॥
नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं । संत मिलन सम सुख जग नाहीं ॥
पर उपकार बचन मन काया । संत सहज सुभाव खगराया ॥
संत सहहि दुख परहित लागी । पर दुख हेतु असंत अभागी ॥
भूर्ज तरू सम संत कृपाला । परहित निति सहविपति बिसाला ॥
सन इव खल पर बंधन करई । खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई ॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी । अहि मूषक इव सुनु उरगारी ॥
पर संपदा बिनासि नसाहीं । जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं ॥
दुष्ट उदय जग आरति हेतू । जथा प्रसिद्ध अधर्म केतू ॥
संत उदय संतत सुखकारी । बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी ॥
परम धरम श्रुति बिदित अहिंसा । पर निंदा सम अघ न गिरीसा ॥
हरि गुरु निंदक दादुर होई । जनम सहस्र पाव तन सोई ॥

द्विज निंदक नरक भोग करि । जग जनमइ बायस सरीर धरि ॥
सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी । रौरव नरक परहिं ते प्रानी ॥
होहि उलूक संत निंदा रत । मोह निसा प्रिय ज्ञान भानु गत ॥
सब कै निंदा जे बड़ करहीं । ते चमगादुर होइ अवतरिहीं ॥
सुनहु तात अब मानस रोगा । जिन्ह तें दुख पावहिं सब लोगा ॥
मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला । तिन्ह तें पुनि उपजहिं बहु सूला ॥
काम बात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई । उपजइ सन्यपात दुखदाई ॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना । ते सब सूल नाम को जाना ॥
ममता दादु कंडु इरषाई । हरष विषाद गरह बहुताई ॥
पर सुख देखि जरनि सोई छई । कुष्ट दुष्टता मन कुटिलाई ॥
अहंकार अति दुखद डमरुआ । दंभ कपट मद मान नहरुआ ॥
तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी । त्रिबिध ईषना तरुन तिजारी ॥
जुग बिधि मत्सर अबिवेका । कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका ॥

दो. - एक व्याधि बस नर मरहिं ये असाधि बहु व्याधि ।
पीड़हि संतत कहुँ सो किमि लहइ समाधि ॥
नेम धर्म आचार तप ग्यान जज्ञ जप दान ।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहीं रोग जाहिं हरिजान ॥१२१॥

येहि बिधि सकल जीव जग रोगी । सोक हरष भय प्रीति बियोगी ॥
मानस रोग कछुक मैं गाए । हहिं सब के लखि बिरलेन्हि पाए ॥
जाने ते छीजहि कछु पापी । नास न पावहिं जग परितापी ॥
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे । मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे ॥
राम कृपा नासहि सब रोगा । जौं इहि भाँति बनइ संजोगा ॥
सदगुर बैद बचन बिस्वासा । संजम यह न विषय कै आसा ॥
रघुपति भगति सजीवनि मूरी । अनूपान श्रद्धा मति पूरी ॥
येहि बिधि भलेहि कुरोग नसाहीं । नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं ॥
जानिअ तब मन बिरुज गोसाईं । जब उर बल बिराग अधिकाई ॥

सुमति छुधा बाढ़इ नित नई । बिषय आस दुर्बलता गई ॥
बिमल ज्ञान जल जब सो नहाई । तब रह राम भगति उर छाई ॥
सिव अज सुक सनकादिक नारद । जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद ॥
सब कर मत खगनायक येहा । करि य राम पद पंकज नेहा ॥
श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं । रघुपति भगति बिना सुख नाहीं ॥
कमठ पीठि जागहिं बरु बारा । बंध्यासुत बरु काहुहि मारा ॥
फूलहि नभ बरु बहु बिधि फूला । जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला ॥
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना । बरु जामहिं सस सीस बिषाना ॥
अंधकार बरु रबिहि नसावै । राम बिमुख न जीव सुख पावै ॥
हिम तें अनल प्रगट बरु होई । बिमुख राम सुख पाव न कोई ॥

दो. - बारि मथे घृत होइ बरु सिकता तें बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल ॥
मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन ।
अस बिचारि तजि संसय रामहिभजहिं प्रबीन ॥१२२॥

श्ला. - बिनिश्चितं बदामि ते न अन्यथा बचांसि मे ।
हरि नरा भजन्ति ये इतिदुस्तरं तरन्ति ते ॥

कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा । ब्यास समास स्वमति अनुरूपा ॥
श्रुति सिद्धांत इहै उरगारी । राम भजिअ सब काम बिसारी ॥
प्रभु रघुपति तजि सेइअ काही । मोहि से सठ पर ममता जाही ॥
तुम्ह बिज्ञान रूप नहिं मोहा । नाथ कीन्हि मोपर अति छोहा ॥
पूँछिहु राम कथा अति पावनि । सुक सनकादि संभु मन भावनि ॥
सतसंगति दुर्लभ संसारा । निमिषि दंड भरि एकौ बारा ॥
देखु गरुड़ निज हृदयँ बिचारी । मैं रघुबीर भजन अदिकारी ॥
सकुनाधम सब भाँति अपावन । प्रभु मोहि कीन्ह बिदित जगपावन ॥

दो. - आजु धन्य मैं अति जद्यपि सब बिधि हीन ।
निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन्ह ॥
नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ ।
चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोई ॥१२३॥

सुमिरि राम के गुन गन नाना । पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना ॥
महिमा निगम नेति करि गाई । अतुलित बल प्रताप प्रभुताई ॥
सिव अज पूज्य चरन रघुराई । मोपर कृपा परम मृदुलाई ॥
अस सुभाय सुनौं न देखौं । केहि खगेस रघुपति सब लेखौं ॥
साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी । कबि कोबिद कृतज्ञ संन्यासी ॥
जोगी सूर सुतापस ज्ञानी । धर्म निरत पंडित बिज्ञानी ॥
तरहिं न बिनु सेए मम स्वामी । राम नमामि नमामि नमामी ॥
सरन गए मो से अघरासी । होहि सुद्ध नमामि अबिनासी ॥

दो. - जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल ।
सो कृपालु मोपर सदा रहहु राम अनुकूल ॥
सुनि भुसुंडि के बचन सुभ देखि राम पद नेह ।
बोलेउ प्रेम सहित गिरा गरुड़ बिगत संदेह ॥१२४॥

मैं कृतकृत्य भएउँ तब बानी । सुनि रघुबीर भगति रस सानी ॥
राम चरन नूतन रति भई । माया जनित बिपति सब गई ॥
मोह जलधि बोहित तुम्ह भए । मो कहुँ नाथ बिबिध सुख दए ॥
मो पहिं होइ न प्रति उपकारा । दौं तव पद बारहिं बारा ॥
पूरनकाम राम अनुरागी । तुम्ह सम तात न कोउ बड़ भागी ॥
संत बिपट सरिता गिरि धरनी । परहित हेतु सबन्ह कै करनी ॥
संत हृदय नवनीत समाना । कहा कबिन्ह पै कहइ न जाना ॥
निज परिताप द्रबइ नवनीता । पर दुख द्रबहि संत सुपुनीता ॥
जीवन जन्म सुफल मम भएऊ । तब प्रसाद सब संसय गएऊ ॥
जानेहु सदा मोहि निज किंकर । पुनि पुनि उमा कहइ बिहंगबर ॥

दो. - तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेम सहित मतिधीर ।
गएउ गरुड़ बैंकुंठ तब हृदयँ राखि रघुबीर ॥
गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन ।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान ॥१२५॥

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा । सुनत स्रवन छूटहिं भवपासा ॥

प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा । उपजइ प्रीति राम पद कंजा ॥
मन क्रम बचन जनित अब जाई । सुनहिं जे कथा स्रवन मनु लाई ॥
तीर्थाटन साधन समुदाई । जोग बिराग ज्ञान निपुनाई ॥
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना । संजम दम जप तप मख नाना ॥
भूत दया द्विज गुर सेबकाई । बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई ॥
जहँ लोग साधन बेद बखानी । सब कर फल हरि भगति भवानी ॥
सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई । राम कृपा काहूँ एक पाई ॥

दो. - मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास ।
जे यह कथा निरंतर सुनहि मानि बिस्वास ॥१२६॥

सोई सर्वज्ञ गुनी सोई ज्ञाता । सोइ महि मंडन पंडित दाता ॥
धर्म परायन सोई कुलत्राता । राम चरन जाकर मन राता ॥
नीति निपुन सोइ परम सयाना । श्रुति सिद्धांत नीक तेहि जाना ॥
सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा । जो बल छाँड़ भजई रघुबीरा ॥
धन्य सो देस जहाँ सुरसरी । धन्य नारि पतिब्रत अनुसारी ॥
धन्य सो भूप नीति जो करई । धन्य सो द्विज निज धर्मु न टरई ॥
सो धन धन्य प्रथम गति जाकी । धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी ॥
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा । धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा ॥

दो. - सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत ।
श्री रघुबीर परायन जेहि नर उपज बिनीत ॥१२७॥

मति अनुरूप कथा मैं भाषी । जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी ॥
तब मन प्रीति देखि अधिकाई । तौ मैं रघुपति कथा सुनाई ॥
यह न कहिअ सठहीं हठसीलहिं । जो मन लाइ न सुन हरि लीलहिं ॥
कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि । जो न भजइ सचराचर स्वामिहि ॥
द्विजद्रो होहि हि न सुनाइअ कबहूँ । सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ ॥
राम कथा के तेइ अधिकारी । जिन्ह के सतसंगति अति प्यारी ॥
गुर पद प्रीति नीति रत जेई । द्विज सेवक अधिकारी तेई ॥
ता कहुँ यह बिसेषि सुखदाई । जाहि प्रान प्रिय श्री रघुराई ॥

दो. - राम चरन रति जौ चहै अथवा पद निर्बान ।
भाव सहित सो येहि कथा करौ स्रवन पुट पान ॥१२८॥

राम कथा गिरिजा मैं बरनी । कलिमल समनि मनोमल हरनी ॥
संसृति रोग सजीवन मूरी । राम कथा गावहिं श्रुति सूरी ॥
येहि महँ रुचिर सप्त सोपाना । रघुपति भगति केर पंथाना ॥८॥
अति हरि कृपा जाहि पर होई । पाउँ देहि येहि मारग सोई ॥
मनकामना सिद्धि नर पावा । जे येह कथा कपट तजि गावा ॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं । ते गोपद इव भवनिधि तरहीं ॥
सुनि सब कथा हृदयँ अति भाई । गिरिजा बोली गिरा सुहाई ॥
नाथकृपा मम गत संदेहा । राम चरन उपजेउ नव नेहा ॥

दो. - मैं कृतकृत्य भइउँ अब तब प्रसाद बिस्वेस ।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस ॥१२९॥

यह सुभ संभु उमा संबादा । सुख संपदन समन बिषादा ॥
भव भंजन मंजन संदेहा । जन रंजन सज्जन प्रिय येहा ॥
राम उपासक जे जग माहीं । येहि सब प्रिय तिन्हकें कछु नाहीं ॥
रघुपति कृपा जथामति गावा । मैं यह पावन चरित सुहावा ॥
येहि कलिकाल न साधन दूजा । जोग जज्ञ जप तप ब्रत पूजा ॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि । संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहिं ॥
जासु पतितपावन बह बाना । गावहिं कबि श्रुति संत पुराना ।
ताहि भजिअ मन तजि कुटिलाई । राम भजे गति केहि नहिं पाई ॥

छं. - पाई न गति पतितपावन राम भजि खल तारे घना ।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना ॥
आभीर जवन किरात खस स्वपचाति अति अघरूप जे ।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते ॥
रघुबंसभूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं ।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु स्रम रामधाम सिधावहीं ॥
सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरे ।

दारुन अविद्या पंच जनित बिकार श्री रघुपति हरे ॥
सुन्दर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो ।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को ॥
जाकी कृपा लव लेस ते मतिमंद तुलसीदास हूँ ।
पाएउ परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ ॥

दो. - मो सम दीन न दीनहित तुम्ह समान रघुबीर ।
अस विचारि रघुबंसमनि हरहु विषम भवभीर ॥
कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥१३०॥

श्ले. - यत्पूर्चं प्रभुणा कृतं सुकबिना श्रीशम्भुना दुर्गमं ।
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्तैतु रामायणं ॥
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तम:शान्तये ।
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसं ॥
पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं ।
मायामोहभवापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम् ॥
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये ।
ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवा: ॥

***

4.8 अभ्यास प्रश्न :

❋ दीर्घ उत्तरमूलक प्रश्न :

1. तुलसीदास मध्यकाल के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं, कैसे ?
2. रामकथा के माध्यम से तुलसी ने तत्कालीन समाज का बड़ा उपकार किया है - सो क्यों ?
3. रामचरित मानस के मार्मिक स्थलों की समीक्षा कीजिए ।
4. तुलसी की काव्यात्मकता का मूल्यांकन कीजिए ।
5. ''तुलसी ने रामचरित के माध्यम से देश के सामने एक आदर्श रखा, जो यथार्थ से दूर नहीं'' - इस कथन की आलोचना कीजिए ।
6. काक भुशुण्डि - गरुड़ संबाद का महत्त्व उद्घाटित कीजिए ।
7. उत्तर काण्ड के आधार पर तुलसी के जीवन-दर्शन की रूपरेखा तैयार कीजिए ।
8. उत्तर काण्ड में भक्ति के जिस स्वरूप का निर्माण हुआ है उसे अपने शब्दों में लिखिए ।
9. ''तुलसी ने 'स्वान्त:सुखाय' काव्य की रचना की लेकिन 'वह बहुजन हिताय' में बदल गया'' - इस कथन की समीक्षा कीजिए ।

❋ संक्षिप्त प्रश्न :

संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :

1. उत्तर काण्ड में ज्ञान और भक्ति का समन्वय
2. तुलसी की भक्ति भावना
3. तुलसी दर्शन के विविध पक्ष
4. तुलसी की भाषा
5. स्वान्त:सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
6. तुलसी की लोक मंगल -भावना
7. रामचरित मानस में समन्वय की विराट चेष्टा

❋ लघूत्तरी प्रश्न :

सप्रसंग व्याख्या लिखिए :

1) भिन्न भिन्न मैं ……. प्रेरित मोह समीर ।

2) नारी कुमुदिनी अवध सर ……. चले भगवान ।

3) अविरलभगति ……. दयाकरि राम ।

4) माया संभव ……. अचल अनुराग

5) हरि मायाकृत ……. गए विदेस ।

6) जोग अगिनि ……. बाती करइ सुगाढ़ि ।

7). बारि मथे घृत होइ ……. प्रबीन ।

8) मो सम दीन न ……. लागहु मोहि राम ।

1.9 संदर्भ ग्रंथ :

1. तुलसी दर्शन - डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र ।

2.तुलसी का मानस - डॉ. मुंशीराम शर्मा

3. तुलसीदास - डॉ. माताप्रसाद गुप्त ।

4. हिन्दी साहित्य की भूमिका - डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ।

5, श्रीरामचरित मानस - गीता प्रेस , गोरखपुर ।

6. तुलसीदास और उनका काव्य - डॉ. रामनरेश त्रिपाठी ।

7. गोस्वामी दुलसीदास - आ. रामचन्द्र शुक्ल ।

8. तुलसी दर्शन मीमांसा - डॉ. उदयभानु सिंह ।

Unit -II

विनय पत्रिका

2. विनय पत्रिका :

2.1 ग्रंथ परिचय

2.2 नामकरण की सार्थकता

2.3 विनय पत्रिका में बस्तुविधान

2.4 विनय पत्रिका का काव्य रूप

2.5 विनय पत्रिका में भक्ति

2.6 भाव पक्ष : काव्य सौन्दर्य

2.7 कला पक्ष

2.8 अलंकार

2.9 विनय पत्रिका का मूल पाठ

2.10 शब्दार्थ

2.11 संदर्भ के साथ पदों के न्द्रीय भाव

2.12 अभ्यास प्रश्न

2.13 संदर्भ ग्रंथ

Unit -II

विनय पत्रिका

2.1 ग्रंथ परिचय :

इसमें विनय के 276 पद हैं । यह गोस्वामीजी की अंतिम रचना ज्ञात होती है और इसमें उनकी कवित्व शक्ति पूर्णरूपेणा प्रकटित हुई है । इसमें उनके अगाध पाण्डित्य, शब्दकोश, काव्य कौशल आदि का पूरा परिचय मिलता है । यह पत्रिका प्रार्थना के रूप में सजाई गई है और इतनी हार्दिक आस्था के साथ लिखी गई है कि अवश्य ही भगवान श्रीरामचन्द्र ने इसे स्वीकार कर लिया होगा । यह ग्रंथ रामचरित मानस के समान अत्यंत प्रसिद्ध है । कलियुग की कुचाल से पीड़ित होकर, जैसा कवितावली में भी प्रेषित की थी जो एक अरजी या प्रार्थनापत्र के रूप में है । इसमें सबसे पहले मंगलाचरण के रूप में गणेश वन्दना तथा सूर्य, शंकर, देवी, गंगा, यमुना, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, सीता तथा राम एवं नर नारायण की स्तुतियाँ हैं । यह भक्तों का कंठहार है । इसमें तुलसी की निजी भक्तिभावना का विकास देखने को मिलता है । भक्ति के विभिन्न भावों का जिस सच्चाई और स्वाभाविकता के साथ इसमें वर्णन हुआ है वह उत्कृष्ट गीति काव्य का नमूना है । इसमें भक्ति की सरलधारा असंख्य भावों के तरंगों से तरंगित होती हुई प्रवाहित हुई है । इसमें दैन्य, विश्वास, आत्मभर्त्सना, निर्वेद, बोध, दृढ़ता, हर्ष, गर्व, उपालंभ, मोह, चिंता-विषाद, प्रेम आदि विविधभाव अपने सजीव रूप में विद्यमान हैं । इसमें भक्तिरस का ही प्रवाह है । तुलसी ने इस ग्रंथ में गीतिकाव्य का शुद्ध और उत्कृष्ट नमूना रखा है । इसमें तुलसी ने विभिन्न दार्शनिक मतभेदों के झमेले में न पड़कर एक भक्तिमार्ग को अपनाने का संकेत किया है और उन्होंने इस मार्ग पर अपनी अटूट आस्था स्पष्ट की है ।

2.2 विनय पत्रिका के नामकरण की सार्थकता :

विनय भारतीय मनीषा की एक विकसित अवधारणा है जो लोकनीति, नीति, धर्माचरण, आत्मानुशासन, लोक व्यवहार से जुड़कर विनयी को आत्मश्लाघा से मुक्त करती है । लोक में उत्पन्न होने वाले मिथ्याभिमान के ठीक विपरीत यह आत्मा का प्रणतिभरा एक अनुशासन है । आत्मज्ञान जन्य एक संस्कार है । तुलसी ने विनय पत्रिका में 'विनय' शब्द का प्रणति अर्थ में प्रयोग किया है -

''विनय करौं अपभयहु ते तुम्ह परम हितैहो ।''

विनय एक विशेष चित्त दशा है जिसके लिए अहंकार का त्याग आवश्यक है । विनय साधक

की विवेकदशा की वाणी है । विनय अध्यात्म की सर्वोच्च ऊँचाई है । पत्रिका का अर्थ है सामान्य जीवन में पत्र लेखन ; व्यक्तिगत सुख दु:ख, संकट, कुशल, क्षोभ आदि । साहित्य में दूत या दूति के द्वारा गुप्त संदेश पत्र के माध्यम से प्रेषित करने की परिपाटी मिलती है । सूर भी पत्र लेखन द्वारा आत्मकथ्य निवेदित करने की चर्चा करते हैं । यहाँ पत्रिका तुलसीदास का आत्मलेखन है । वह इस पत्रिका के माध्यम से अपनी निजी पीड़ा तथा आत्मकथ्य को श्रीराम तक पहुँचाना चाहते हैं । पत्रिका इसलिए लिखी गई है कि जीव की अकिंचनता ईश्वर की केवल कृपा कटाक्ष से, एक बार देख लेने मात्र से दूर हो जाएगी । जीव को वियोग, अपनी तुच्छता तथा अकिंचनता से मुक्त करके अपनाए जाने की कामना ही इस पत्रिका का उपसंहार है । उनकी कृपादृष्टि मात्र से जीव का उद्धार और कल्याण निश्चित है । जीव के प्रति ब्रह्म का क्षणभर के लिए आत्मीयता भरा दृष्टिपात करना ही इस पत्रिका का मूल उद्देश्य है ।

2.3 विनय पत्रिका में वस्तु विधान :

विनय पत्रिका तुलसी की सर्वाधिक प्रौढ़ रचना है । डॉ. माताप्रसाद गुप्त के अनुसार - ''मानस यदि उनकी साधना का आदर्श रूप प्रस्तुत करता है तो विनय पत्रिका उन आदर्शों की अपने जीवन में स्थापना ।'' आचार्यों ने विनय पत्रिका को श्रीरामचरित मानस का साधना रूप स्वीकार किया है । इसमें स्वानुभव की प्रामाणिकता, उक्तियों एवं कथनों की प्रौढ़ता परम्परा के माध्यम से अपने सृजन को जोड़कर तुलसी विनय पत्रिका के जिस रचना रूप को प्रस्तुत करते हैं वह हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ निधि सिद्ध होती है । इस कृति की तुलना रामचरित मानस से ही की जा सकती है । यह कृति कुछ क्षेत्रों में मानस से भी बढ़कर है । मानस में एक निर्दिष्ट कथा विधान है ; विनय पत्रिका में कोई निर्दिष्ट कथा विधान नहीं है । विनय पत्रिका में कई स्तोत्र हैं जिनमें देवताओं के स्वरूप का गुण कथन है । ये स्तोत्र वैष्णव, शैव और शक्ति सभी साहित्य में मिलते हैं ; वे उनके गुण कथन द्वारा उन्हें प्रसन्न करके अपने अभीष्ट की याचना करते हैं । लेकिन उनकी निष्ठा जैसी श्रीराम में है वैसी न सूर्य में है, न गणेश में है, न गौरी में, न ब्रह्मा में, न विष्णु में और न शिव म हैं । उनकी भक्ति निष्ठा सिर्फ श्रीराम में है । वे परात्पर एवं निरंजन ब्रह्म हैं । उनके स्तोत्र उदार वैष्णवी आस्था के प्रतीक हैं ।

विनय पत्रिका में आध्यात्मिक अनुभव की दिव्यता है । विनय पत्रिका में वस्तुविन्यास का दुहरापन दिखाई पड़ता है । इसके वस्तु विन्यास में विशिष्ट द्वैत के प्रपत्तिवाद का संशोधित स्वरूप दिखाई देता है । जीव के प्रति ईश्वर की अहैतुकी कृपा ही उसकी मूल अवधारणा है । भक्त कर्मकांड, ज्ञान, उपासना, योग आदि के द्वारा आराध्य की कृपा पात्र बनता है । इन सभी के मूल में भक्ति का होना अनिवार्य है । इसका वस्तुविधान कथात्मक न होकर भावात्मक है । विनय पत्रिका के अंतिम पदों में तुलसी ने जीव और ब्रह्म के पारस्परिक संबंध को व्यक्त करने की कोशिश की है । ये पद तुलसी की गूढ़ आध्यात्मिक साधना एवं भक्ति की रहस्यमयी सृष्टि से ओतप्रोत हैं ।

विनय पत्रिका का भावात्मक वातावरण श्रीरामचरित मानस से भिन्न है और परिस्कृत भी । इसमें एक भावात्मक परिवेश की सृष्टि की गई है जिसमें भक्ति की धारा स्वत: प्रवाहित है । इसमें अजस्र करुणा, गहन दैन्य, आवेगपूर्ण समर्पण तथा शरणागत के प्रति प्रतिबद्धता के भाव सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं । विनय पत्रिका में आध्यात्मिक आस्वादन की जो परिस्थिति चित्रित है वह ऐकान्तिक होते हुए भी रचना के स्तर पर सार्वजनीन है । कवि कहते हैं -

आखर अरथ मंजु मृदु मोदक राम प्रेम पगि पागि हैं ।

*　　*　　*

राम प्रसाद दास तुलसी राम भगति जोग जागि है ।

श्रीराम भक्तियोग की तन्मयावस्था का वातावरण सृजन विनय पत्रिका का लक्ष्य है ।

यह संसार प्रत्येक भाँति नश्वर और तत्त्वहीन है । इसलिए सबको मिथ्या आभास रूप समझ कर एकमात्र ईश्वर की शरण में आ गिरता है । तुलसी कहते हैं -

परम कठिन भव काल ग्रसित हैं । त्रसित भयो भयभारी ।

चाहत अभय भेंक सरनागत खगपति नाथ विसारी ।

प्रत्येक मनुष्य इस संसार में अकेलेपन और पीड़ा का अनुभव करता है । छटपटाते क्लांत व्यक्ति द्वारा उत्पन्न किया जाता हुआ शोक विनय पत्रिका में सर्वत्र मिल जाता है । विनय पत्रिका संपूर्ण जीव की ब्रह्म सत्ता से तादात्म्यकरण की अनन्य निष्ठा भरी गाथा है ।

भक्ति रस के अतिरिक्त 'विनय पत्रिका' में शांतरस प्रधान है । भक्ति की अपेक्षा तुलसी ने आत्मचिंतन पर भी बल दिया है वे कहते हैं -

रघुपति भगति करत कठिनाई ।

कहत सुगम, करनी अपार, जानै सोइ जेहि बनि आई ॥

*　　*　　*

सोक-मोह-भय-हरष-दिवस-निसि देस-काल तहँ नाहीं ॥

(वि.प्र. -पृ. 167)

इनके अतिरिक्त विनय पत्रिका में अन्य रसों का अभाव है । 'राम' से विमुख होने वालों की भर्त्सना भी की गई है । कुछ पदों में उनके आराध्य परम दयालु हैं । उनके काव्य में भक्ति के आलंबन राम हैं । वे कहते हैं -

देव, दूसरो कौन दीन को दयालु ।

सील निधान सुजान सिरोमनि, सरनागत प्रिय प्रनतपालु ॥

को समरथ सर्वज्ञ सकल प्रभु, सिव-सनेह -मानस- मरालु ।
को साहिब किये मीत प्रीतिबस खग, निसिचर कपि भील भालु ॥

(वि.प. - पृ. -154)

राम नाम को महत्व देते हुए उन्होंने कहा है कि यही भव संसार से उद्धारक हैं -

कलि नाम कामतरु राम को ।
दलनिहार दारिद दुकाल दुख, दोष घोर धन धाम को ॥

(वि. प. -पृ.-156)

इस तरह के अनेक उदाहरण विनय पत्रिका में मिल जाते हैं । तुलसी ने अपने पदों में जो दैन्यभाव दिखाया है यह भगवान को दया -द्रवित करता है । तुलसी में दीनभाव चरम सीमा पर है । एक पद में वे यह भाव व्यक्त करते हुए कहते हैं -

तुम सम दीनबंधु न कोउ, मो सम सुनहु नृपति रघुराई ।
सो मम कुटिल-मौलिमनि नहिं जग, तुम सम हरिन हरन कुटिलाई ॥

हौं मन बचन करम पातक-रत, तुम कृपालु पतितन गतिदाई ।
हौं अनाथ प्रभु, तुम अनाथ-हित, चित यह सुरति कबहुँ नहिं जाई ॥

(वि. प.-पृ. -242)

2.7 कला पक्ष :

'विनय पत्रिका' का कला पक्ष प्रौढ़, प्रांजल एवं मार्जित है । अत्यंत उच्चकोटि के शब्द -भंडार से समृद्ध है । इसकी भाषा संस्कृत गर्भित, सामासिक पदावली से मुक्त है तथा इसमें क्लिष्टतम भाषा भी मिलती है । तुलसी ने सीधी-सादी व्यावहारिका संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है ।

सरलतम पद का एक उदाहरण प्रस्तुत है :

''ऐसे राम दीन-हितकारी ।
अति कोमल करुना निधान बिनुकारन पर-उपकारी ॥ (वि.प.- पृ.- 166)

तुलसी की भाषा भावानुरूपिणी है । स्तोत्रों तथा देवताओं के महिमा -गान की भाषा संस्कृत गर्भित है । तुलसी का भगवान के प्रति आवेदन अत्यंत राजकीय -आवेदन -पत्र शैली में हुआ है । इसमें फारसी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है । जैसे - गुलाम, महल, सौदा, साहिब, लायक, सरस आदि शब्द । तुलसी की एक विशेषता यह रही है कि समसामयिक प्रचलित भाषाओं से उन्होंने शब्दों को आहरण किया और सफलता के साथ अपनी रचनाओं में उसका प्रयोग भी किया । उन्होंने लोकोक्ति

और मुहावरों का भी आश्रय लिया है । जैसे 'नहिं कुंजरो नरो' 'गाड़ी के स्वान की नाहीं' आदि लोकोक्तियों तथा सतरंज कौ सौ राज, पेट खयालो, लोचन जनिफेरो, आदि मुहावरों के प्रयोग द्रष्टव्य है । इनकी भाषा सर्वत्र प्रसाद गुणभुक्त है । कुछ पद माधुर्य गुण से युक्त है । शिव-हनुमान आदि की स्तुति इसका उदाहरण है -

''जयति मरुदंजनामोद -मंदिर-नतग्रीव, दुखैक -बन्धो । (वि.प. -पृ.-27)

2.8 अलंकार :

तुलसी ने प्राय: शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का आश्रय लिया है । अनुप्रास, यमक, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, तुल्ययोगिता, विषम, ब्याजस्तुति आदि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है । विनय पत्रिका में कई जगह अलंकार स्वत: स्फूर्त प्रतीत होते हैं ।

रचना शैली एवं छंदविधान की दृष्टि से देखा जाय तो विनय पत्रिका एक सफल भावपूर्ण काव्य है । इसमें तुलसी की अभिव्यक्ति आत्मप्रधान है । अधिकांश पद उनके आवेगक्षणों में रचित हैं । प्रत्येक पद में लगता है कि एक ही भाव केन्द्रित है भावों की गहनता के कारण कई जगह संक्षिप्तता भी है । विनय पत्रिका में लगभग २१ रागों का प्रयोग हुआ है । जैसे धनाश्री, वसन्त, मारु, भैरव, सारंग, गौरी, केदार, ललित मलार, सोरठ, कल्याण आदि । इससे उनकी भाषा में लालित्य है और माधुर्य भी । इनकी अन्तर्मुखता व्यक्ति केन्द्रिक होते हुए भी लोकोपकारिणी तथा अत्यंत मनोहारिणी है । मानस की तरह पाठकों में विनय पत्रिका का भी बहुत आदर है । इसकी पदावलियाँ अधिकांश गेय होने के कारण अत्यंत आत्मतोषकारिणी हैं । भाषा, भाव, छंद तथा लय की दृष्टि से यह भक्ति रस की सर्वोत्कृष्ट कृति बन पड़ी है इसमें कोई संदेह नहीं है ।

विनय पत्रिका

(मूल पाठ)

श्रीगणेश स्तुति :

गाइए गनपति जगबंदन । संकर-सुबन भवानीनन्दन ॥
सिद्धिसदन गजबदन बिनायक । कृपासिन्धु सुन्दर सब लायक ॥
मोदकप्रिय मुद-मंगल-दाता । विद्यावारिधि बुद्धि -विधाता ॥
मांगत तुलसिदास कर जोरे । वसहिं रामसिय मानस मोरे ॥१॥
दीनदयालु दिवाकर देवा । कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा ॥
हिम-तक-करि-केहरि करमाली । दहन दोष-दुख-दुरित-रुजाली ॥
कोक-कोकनद-लोक -प्रकासी । तेज-प्रताप-रूप-रस -रासी ॥
सारथि पंगु, दिव्य रथ-गामी । हरि-संकर-बिधि-मूरति स्वामी ॥
बेद पुरान प्रगट जस जागै । तुलसी राम-भगति वर माँगै ॥२॥

को जाँचिए संभु तजि आन ?
दीनदयालु भगत-आरतिहर सब प्रकार समरथ भगवान ॥
कालकूट-जुर जरत सुरासुर, निज पन लागि कियो विषपान ।
दारुन दनुज जगत दुखदायक जार्‌यो त्रिपुर एक ही बान ॥
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ कहत संत स्रुति सकल पुरान ।
सोई गति मरन-काल अपने पुर देत सदासिव सवहिं समान ॥
सेबत सुलभ उदार कलपतरु पारबती-पति परम सुजान ।
देहु कामरिपु रामचरन-रति, तुलसिदास कहँ कृपानिधान ॥३॥

राग धनाश्री

दानी कहुँ संकर सब नाहीं ।
दीनदयालु दिबोई भावै जाचक सदा सोहाहीं ॥
मारि कै मार थायो जग में जाकी, प्रथम रेख भट माहीं ।
ता ठाकुर को रीझि निवाजिबो कह्यो क्यों परत मो पाहीं ? ॥
जोग कोटि करि जो गति हरि सों मुनि मांगत सकुचाहीं ।
बेदविदित तेहि पद पुरारि-पुर कीट पतंग समाहीं ॥
ईस उदार उमापति परिहरि अनत जे जांचन जाहीं ।
तुलसिदास ते मूढ़ मांगने कबहुँ न पेट अघाहीं ॥४॥

वावरो रावरो नाह, भवानी ?
दानि बड़ो दिन, देत दए बिनु, बेद-बड़ाई भानी ॥
निज घर की घरवात विलोकहु, हो तुम परम सयानी ।
सिव की दई संपदा देखत श्री-सारदा सिहानी ॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी ।
तिन रंकन को नाक संवारत, हौं आयो नकवानी ।।
दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी ।
यह अधिकार सोंपिए औरहिं, भीख भली मैं जानी ॥
प्रेम-प्रसंसा-विनय-व्यंग-जुत सुनि विधि की वर बानी ।
तुलसी मुदित महेस, मनहिं मन जगतमातु मुसुकानी ॥५॥

राग रामकली

जाँचिए गिरिजा कासी । जासु भवन अनिमादिक दासी ॥
औढ़र-दानि द्रवत पुनि थोरे । सकत न देखि दीन कर जोरे ॥
सुख संपति मति सुगति सुहाई । सकल सुलभ संकर सेवकाई ॥
गए जे सरन आरति-के लीन्हे । निरखि निहाल निमिष महँ पावै ॥६॥

कस न दीन पर द्रवहु, उमावर । दारुन -बिपति-हरन, करुनाकर ।
बेद-पुरान कहत उदार हर । हमरि बेर कस भयो कृपिनतर ॥
कवनी भगति कीन्हीं गुननिधि द्विज । ह्वै प्रसन्न दीन्हेउ सिव पद निज ॥
जो गति अगम महामुनि गावहिं । तव पुर कीट पतंगहु पावहिं ॥
देहु कामरिपु ! रामचरन -रति । तुलसीदास प्रभु हरहु भेद-मति ॥७॥

देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे ।
किए दूर दुख सबनि के जिन जिन कर जोरे ॥
सेवा सुमिरन पूजिबो, पात आखत घोरे ।
दियो जगत जहँ लगि सबै सुख गज रथ घोरे ॥
गाँव बसत, बामदेव, मैं कबहूँ न निहोरे ।
अधिभौतिक बाधा भई, तें किंकर तोरे ॥
बेगि बोलि बलि, वरजिए करतूति कठोरे ।
तुलसी दलि रुंध्यो चहैं सठ साखि सिहोरे ॥८॥

सिव, सिव ! होइ प्रसन्न करु दाया ।
करुनामय, उदार-कीरति, बलि जाउँ ! हरहु निज माया ॥
जलज-नयन, गुन-अयन, मयन-रिपु, महिमा जान न कोई ।
बिन तव कृपा रामपद-पंकज सपनेहुँ भगति न होई ॥
ऋधि सिद्ध मुनि मनुज दनुज सुर अपर जीव जग माहीं ।
तव-पद बिमुख न पारा पाव कोउ कलप कोटि चलि जाहीं ॥
अहिभूषन, दूषन-रिपु-सेवक, देव-देव, त्रिपुरारी ।
मोह-निहार-दिवाकर, संकर, सरन -सोक -भयहारी ॥
गिरिजा -मन-मानस-मराल, कासीस, मसान -निवास ।
तुलसिदास हरिचरन-कमल, हर ! देहु भगति अबिनासी ॥९॥

राग धनाश्री

देव ! मोह-तम-तरणि, हर, रुद्र, शंकर,शरण,
हरण -भयशोक, लोकाभिराम ।
बालशशि-भाल, सुविशाल लोचन-कमल,
काम - शटकोटि - लावण्यधाम ॥
कंबु, कुंदेंदु-कर्पूर -विग्रह रुचिर,
तरुण-रवि-कोटि तनु तेज भ्राजै ।
भस्म सर्वांग अर्द्धांग शैलात्मजा,
ब्याल-नृकपाल-माला बिराजै ॥
मौलि संकुल-जटामुकुट -विद्युच्छटा,
तटिनि बर बारि हरि-चरण -पूतं ।
श्रवण कुंडल, गरलकंठ, करुणाकंद,
सच्चिदानन्द बंदेऽवधूतं ॥
शूल-सायक-पिनाकासि-कर शत्रुवन-
दहन इव धूमध्वज वृषभ-यानं ।
व्याध्र-गज-चर्म्म परिधान, विज्ञान-घन,
सिद्ध-सुर-मुनि-मनुज-सेव्यमानं ॥
तांडवित-नृत्य-पर, डमरु डिमडिम-प्रवर,
अशुभ इव भाति कल्याणराशी ।
महाकल्पांत ब्रह्मांड-मंडल -दवन,
भवन कैलास, आसीन काशी ॥
तज्ञ, सर्वज्ञ, यज्ञेश, अच्युत, विभो,
विश्व भवदंशसंभव, पुरारी ।
ब्रह्मेंद्र-चंद्रार्क-वरुणाग्नि-वसु-मरुत-यम,
अर्चि भवदंघ्रि सर्व्वाधिकारी ॥
अकल निरुपाधि, निर्गुण, निरंजन, ब्रह्म,
कर्म-पथमेकमजनिर्विकारं ।

अखिल विग्रह, उग्ररूप शिव भूपसुर,
सर्वगत, शर्व, सर्वोपकारं ॥
ज्ञान, वैराग्य, धन, धर्म, कैवल्य सुख,
सुभग सौभाग्य शिव सानुकूलं ।
तदपि नर मूढ़ आरूढ़ संसार-पथ
भ्रमत भव विमुख-तव-पादमूलं ॥
नष्टमति दुष्ट अति, कष्ट-रत, खेदगत
दासतुलसी शंभु शरण आया ।
देहि कामारि श्रीराम-पद-पंकजे
भक्तिमनवरत गत-भेद-माया ॥१०॥

भीषणाकार भैरव भयंकर, भूत-प्रेत-प्रमथाधिपति विपति-हर्त्ता ।
कोह-मूषक-मार्जार, संसार-भय-हरण, तारणतरण करण कर्त्ता ॥
अतुल बल विपुल विस्तार विग्रह गौर, अमल अति धवल धरणीधराभं ।
शिरसि संकुलित कल कूट पिंगल जटा-पटल शतकोटिविद्युच्छटाभं ॥
भ्राज बिबुधापगा-आप पावन परम, मौलिमालेव शोभाविचित्रं ।
ललित लल्लाट पर राज रजनीश कल, कलाधर, नौमि हर धनद-मित्रं ॥
इंदु-पावक-भानु-नयन, मर्दनमयन, ज्ञानगुण-अयन, विज्ञानरूपं ।
रमण गिरिजा, भवन, भूधराधिप सदा, श्रवणकुंडल, वदन-छवि अनूपं ॥
चर्म-असि -शूल-धर डमरू-शर-चाप-कर, यान वृषभेश, करुणानिधानं ।
जरत सुर असुर नरलोक शोकाकुलं मृदुलचित अजित कृत गरलपानं ॥
भस्मतनुभूषणं, व्याघ्रचर्म्माम्बरं, उरग-नरमौलि-उरमालधारी ।
डाकिनी-शाकिनी-खेचरं-भूचरं यंत्रमंत्र-भंजन, प्रबल कल्मषारी ॥
काल अतिकाल, कलिकाल-व्यालादि-खग, त्रिपुरमर्दन भीम-कर्म भारी ।
सकल-लोकांत -कल्पांतशूलाग्रकृत दिग्गजाव्यक्त-गुण नृत्यकारी ॥
पाप संताप घनघोर संसृति दीन भ्रमत जगयोनि नहिं कोपि त्राता ।
पाहि भैरवरूप रामरूपी रुद्र, बंधु गुरु जनक जननी विधाता ॥

यस्य गुणगण गनति विमलमति शारदा निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी ।
शेष सर्वेश आसीन आनन्दवन, प्रणत तुलसीदास त्रासहारी ॥११॥

सदा शंकरं, शंप्रदं, सज्जनानन्ददं, शैलकन्यावरं, परम रम्यं ।
काममदमोचनं, तामरस-लोचनं वामदेवं भजे भावगम्यं ॥
कंबु-कुंदेंदु -कर्पूरगौरं, शिवं, सुन्दरं, सच्चिदानन्दकंदं ।
सिद्ध-सनकादि-योगीद्र-वृन्दारका-विष्णु-विधि-वैद्य चरणारविदं ॥
ब्रह्मकुलवल्लभं, सुलभमतिदुर्लभं, विकटवेषं, विभुं, वेदपारं ।
नौमि करुणाकरं, गरलगंगाधरं, निर्मलं, निर्गुणं, निर्विकारं ॥
लोकनाथं, शोकशूलनिर्मूलिनं शूलिनं मोहतम-भूरि-भानुं ।
कालकालं, कलातीतमजरं हरं, कठिन-कलिकाल-कानन-कृशानुं ॥
तज्ञमज्ञानपाथोधि -घटसम्भवं, सर्वगं, सर्वसौभाग्य-मूलं ।
प्रचुर-भव-भंजनं, प्रणत-जन-रंजनं, दासतुलसी शरण सानुकूलं ॥१२॥

राग वसंत

सेबहु सिवचरण-सरोज-रेनु । कल्यान-अखिलप्रद कामधेनु ॥
कर्पूरगौर, करुनाउदार । संसार -सार भुजगेंद्रहार ॥
सुख-जनम-भूमि महिमा अपार । निर्गुन, गननायक, निराकार ॥
त्रयनयन, मयन-मर्दन, महेस । अहंकार -निहार-उदित -दिनेस ॥
बर बाल-निसाकर, मोलि भ्राज । त्रैलोक्य-सोकहर, प्रमथराज ॥
जिन कहँ विधि सुगति न लिखी भाल । तिनकी गति कासीपति कृपाल ॥
उपकारी कोऽपर हर समान ? सुर असुर जरत कृत गरलपान ॥
बहु कल्प उपाय करिय अनेक । बिनु संभु कृपा नाहिं भव-विवेक ॥
विज्ञान-भवन, गिरिसूता-रमन । कह तुलसिदास मम त्रास-समन ॥१३॥

देखो देखो वन बन्यों आजु उमाकंत । मनो देखन तुमहिं आई रितु बसंत ॥
जनु तनुदुति चंपक -कुसुम-माल। सूचत कटि केहरि, गति मराल ॥

कल कदलि जंघ, पद कमल लाल । सूचत टिे हरि, गति मराल ॥
भूषन प्रसून बहु बिबिध रंग । नूपुर किंकिनि कलरव -बिहंग ॥
कर नवल बकुल-पल्लव रसाल । श्रीफल कुच, कंचुकि लताजाल ॥
आनन सरोज, कच मधुपपुंज । लोचन बिसाल नव नीलकंज ॥
पिक-बचन, चरित बर बरहि कीर । सित सुमन हास, लीला समीर ॥
कह तुलसिदास सुनु सिव सुजान । उर बसि प्रपंच रचै पंचबान ॥
करि कृपा हरिय भ्रम-फंदकाम । जेहि हृदय बसहिं सुखरासि राम ॥१४॥

राग मारू

दुसह-दोष-दुख-दलनि करु देवि ! दाया !
बिस्वमूलासि, जन-सानुकूलासि, कर-सूलधारिनि महामूल माया ॥
तड़ितगर्भांग सर्वांग सुन्दर लसत, दिव्य पट, भव्य भूषन बिराजै ।
बालमृगमंजु-खंजन-बिलोचनि, चंद्रबदनि, लखि कोटि रतिमार लाजै ॥
रूप-सुख-शील-सीमासि भीमादि रामासि वामासि बर बुद्धि बानी ।
छमुख-हेरंब-अम्बासि जगदम्बिके ! शंभुजायासि जय जय भवानी ॥
चंड-भुजदंड-खंडनि बिहंडनि, महिषमद-भंग करि अंग तोरे ।
सुम्भ नि:सुम्भकुम्भीस रनकेसरिनि, क्रोधबारिधि बैरि अरिवृंद बोरे ॥
निगम-आगम-अगम, गुर्वि तव गुनकथन उर्बिधर करत जेहि सहस जीहा ।
देहि मा ! मोहि पन-प्रेम, यह नेम निज राम घनश्याम, तुलसी पपीहा ॥१५॥

राग रामकली

जय जय जगजननि, देवि, सुर-नर-मुनि-असुर-सेवि,
भक्ति -मुक्ति-दायिनी, भयहरनि, कालिका ।
मंगल-मुद-सिद्धिसदनि, पर्वसर्वरीश -बदनि,
ताप-तिमिर-तरुनतरनि -किरनमालिका ॥
बर्मचर्म्मकर कृपान, सूल-देल-धनुष-बान-
धरनि, दलनि दानबदल, रन-करालिका ।

पूतना- पिसाच- प्रेत- डाकिनि -साकिनि- समेत,
भूत ग्रह बेताल खग मृगालि-जालिका ॥
जब महेसभामिनी, अनेकरूप -नामिनी,
समस्त लोकस्वामिनी, हिमसैलबालिका ।
रघुपति-पद परम प्रेम तुलसी यह अचल नेम,
देहि ह्वै प्रसन्न पाहि प्रनतपालिका ! ॥१६॥

जय जय भगीरथनंदिनी, मुनिचय-चकोरचंदिनी,
नर-नाग-बिबुध-बंदिनी, जय जह्नु-बालिका ।
बिष्नुपदसरोजादि, ईस-सीस पर निभासि,
त्रिपथगासि, पुन्यरासि, पाप-छालिका ॥
विमल-बिपुल बहसि वारि, सीतल त्रयतापहारि,
भंवर वर, बिभंगतर, तरंगमालिका ।
पुरजन-पूजोपहार, सोभित ससि -धवल धार,
भंजनि-भवभार, भक्ति-कल्प -थालिका ॥
निजतटबासी बिहंग, जल-थल-चर-पसु-पतंग,
कीट, जटिल तापस सब सरिस पालिका ।
तुलसी तब तीर तीर सुमिरत रघुबंस बीर,
विचरत, मति देहि मोह-महिष-कालिका ॥१७॥

राग धनाश्री

जयति जय सुरसरी जगदखिल-पावनी ।
बिष्नु-पदकंज-मकरंद- इव अंबु बर बहसि, दुख दहसि अघ-बृंद -बिद्राविनी ॥
मिलित जलपात्र-अज-युक्त-हरिचरनरज, बिरज, बरबारि-त्रिपुरारि सिर -धामिनी ॥
जह्नु-कन्या धन्य, पुन्यकृत सगरसुत, भूधर-द्रोनि-बिद्दरनि, बहुनामिनी ॥
यक्षगंधर्ब मुनि किन्नरोरग दनुज मनुज मज्जहिं सुकृतपुंज जुतकामिनी ।
स्वर्गसोपान, विज्ञान-ज्ञानप्रद ! महिमदन -पाथोज- हिमजामिनी ॥

हरित गंभीर बानीर दुहुँ बर, मध्य धारा बिसद बिस्व -अभिरामिनी ।
नील पर्यंक कृत समय सर्पेस जनु सहससीसावली स्त्रोत सुरस्वामिनी ॥
अमितमहिमा अमितरूप भूपावली -मुकुटमनि-बंदिते ! त्यौलोकगामिनी ।
देहि रघुबीर -पद -प्रीति निर्भर मातु ! दासतुलसी त्रासहरनि भवभामिनी ॥१८॥

राग रामकली

हरनि पाप त्रिबिधताप सुमिरत सुरसरि ।
बिलसति महि कल्पबेलि मुद-मनोरथ -फरित ॥
सोहत ससिधवल -धार सुधा-सलिल -भरित ।
विमलतर तरंग लसत रघुवर के-से चरित ॥
तो बिनु जगदंब गंग ! कलिजुग का करित ?
घोर भव-अपार-सिंधु तुलसी किमि तरित ॥१९॥

ईस-सीस बससि, त्रिपथ लससि नभ -पताल-धरनि ।
सुर, नर, मुनि, नाग, सिद्ध, सुजन मंगल -करनि ॥
देखत दुख-दोष-दुरित-दाह-दारिद्र-दरनि ।
सगर-सुवन-साँसति-समनि, जलनिधि-जल -भरनि ।।
महिमा की अवधि करसि, बहु विधि-हरि -हरनि ।
तुलसी करु बानि विमल, विमल -बरनि - बरनि ॥२०॥

2.10 शब्दार्थ :

पद-1. नभपति = शिवजी के गणों के स्वामी । सुवन = पुत्र । देहली दीपक न्याय से (अर्थात् जैसे देहली पर दिया रखने से भीतर बाहर दोनों ओर चांदनी हो जाती है ऐसे ही) शिव-पार्वती के पुत्र ऐसे अर्थ हुआ नहीं तो सुवक और नन्दन जैसे शब्द एकार्थक होने से पुनरुक्त दोष आता है) नन्दन = प्रसन्न करने वाले । सदन = घर । वदन =मुख । वारिधि = समुद्र । अष्ट सिद्धि = 1. अणिमा (छोटा रूप धरना) 2. महिमा (बड़ा रूप धरना) 3. गरिमा (भारी होना) 4. लघिमा (हलका हो जाना) 5. प्राप्ति (चाहे जहाँ चले जाना) 6. प्राकाम्य (मनचाही वस्तु प्राप्त कर लेना) 7. ईशित्व (प्रभुता होना) 8. वशित्व (जिसको चाहे वश में कर लेना ।

पद –2.: दिवाकर =सूर्य । हिम = पाला । तम = अँधेरा । करि = हाथी । केसरि = सिंह । करमाली = किरणों की माला धारण किये । दहन = अग्नि । दुरित = पाप । रुज = रोग । अली = पंक्ति, कतार । काक = चकवा -चकवी । कोकनद = कमल ।

पद –4 :.पारत = दुख । कालकूट = हलाहल विष । दारुन = कठिन । स्तुति = वेद । उदार = दानी । परम =बहुत ।

पद – 5 : रावरो = तुम्हारा । नाह = पति । श्री = लक्ष्मी । सारदा = सरस्वती । सिहानी = ईर्ष्या की । नाक = स्वर्ग । व्यंग = जो सीधे अर्थ है उसे छोड़कर कुछ और ही दूसरा भाव समझ पड़े वही व्यंग कहलाता है । यहाँ भीतर का अर्थ समझना कि तुम्हारे पति अच्छा है बावला नहीं है इत्यादि और इसमें व्याजस्तुति अलंकार है क्योंकि यहाँ निन्दा के बहाने स्तुति की है ।

पद –6.: औढ़र - दानि = मनमौजी । द्रवत = कृपालु होते हैं । आरत = दुखी । निमिष = पल ।

पद –7 : भेदमति = जीव ब्रह्म में भेद मानना । प्रभु = समर्थ । वर = पति ।

पद –8 : आषत = चावल । वामदेव = शिवजी अधिभौतिक = शरीर की बाधा । (यहाँ काम क्रोधादि से आशय है) । साखि = वृक्ष । सहोरा = भूअढ़, सेहुड़ ।

पद –9 : जलज = कमल । अयन=घर । मयन = कामदेव । अहि = सर्प । नीहार = बरफ, पाला । दनुज = दैत्य ।

पद –10 : तरनि = सूर्य । लावण्य = सुन्दरता । विग्रह = शरीर । नृ =मनुष्य । कपाल = मुंड । मौलि = शिर । संकुल =व्याप्त । तटिनी = नदी (गंगाजी) । पूत = पवित्र । स्रवन = कान । धूमध्वज = अग्नि । यान -सवारी । परिधान =वस्त्र । घन = पूर्ण या मेघ । प्रवर = बड़ा सुन्दर । असीन = बैठे हुए । अर्घ्य = पूजन करके । विभव = वैभव । कैवल्य =मुक्ति । अनवात = अतल ।

पद –11: आभं =कान्ति । कल = सुन्दर । पटल = पाँति । रजनीस = रात्रि का स्वामी । कलाधर = चन्द्रमा । चर्म = ढाल । असि = तरवार । जान(पान) =सवारी । खेचा = आकाशचर । संसृति = संसार । खग = गरुड़ । भूचर = भूमिचर । अव्यक्त = अप्रकट , प्रमुख आदि ।

पद -12 : सं = कल्याण । शैलकन्या = पर्वत की पुत्री पावती । वर =पति । तामरस = कमल । कंद = जड़ । इन्दु = चन्द्रमा । वृन्दारक = देवता । अरविन्द = कमल । भूतिर = बहुत । अतीत = दूर, परे । कानन = वन । कृसानु = अग्नि । पयोधि = समुद्र । घटसंभव = अगस्त्य । प्रचुर = बहुत । सानुकूल = कृपालु ।

पद -13 : अखिल = सब । मयन = काम । निहार = बरफ, पाला । मौलि = सिर ।

पद –14 : कल =सुन्दर । सूचत = जताती है । केहरि =सिंह । मराल = हँस । रव = शब्द । रसाल = आम । कच = बाल । कंज = कमल । बरहि = मोर । पंचवान = कामदेव ।

पद –15 : मूल =जड़ उत्पत्ति स्थान । असि = हो । भव्य =सुन्दर । मार = काम । छमुख = स्वामि कार्तिक । हेरंब =गणेश । वृंद = समूह । चंड-सुंभ-निसुंभ = ये सब राक्षस थे इनको देवी ने मारा है । इनकी कथा मार्कण्डेय बुराण में है । गुर्वि = भारी । उर्बिधर = शेष नाग । सहस जीहा = हजार जीभवाला ।

पद –17 : चय = समूह । जहनु = एक ऋषि ।(जहनु ऋषि गंगा तट पर रहते थे । एक बार गंगाजी ऐसी चढ़ीं कि ऋषि का आश्रम डूब गया । यह देख गंगाजी का पान कर गये । परंतु जब भगीरथी ने बड़ी विनय की तब फिर उन्हें प्रकट कर दिया । इस लिए गंगा जह्नु की पुत्री कहलाती है) । विपुल = बहुत । विभंगतर = बड़ी चंचल । थालिका = थांमला । सरिस = बराबर ।

पद –18 : अंबु = जल । वृन्द = समूह । अज = ब्रह्मा । विरज = निर्मल । पाथेज - कल । जामिनी = रात्रि । वानीर = बेंत । स्रोत = सोता । निर्भर = गाढ़ी, बहुत । त्रास = भय । भब = शिव ।

पद –19 : तो बिनु = तुम्हारे बिना । भव - संसार ।

पद –20 : दुरति पाप । सांसति = यम यातना । अवधि = दृढ़, मर्यादा ।

2.11 संदर्भ के साथ पदों के केंन्द्रीय :

पद –1 : गणेश स्तवन निर्विघ्न ग्रंथ समाप्ति - एवं मंगल कामना के लिए है । यहाँ कवि णणेश के विविध संदर्भों का स्मरण करते हुए 'राम-सीता' की आत्यन्तिक सन्निकटता की प्राप्ति की याचना उनसे करते हैं ।

पद –2 : इस पद में सूर्य की वन्दना की गई है । वे राम के पूर्वपुरुष एवं कुलाधार हैं । उनकी वन्दना का मुख्य उद्देश्य राम भक्ति याचना ही है ।

पद –3 : कवि शिव की स्तुति श्रीराम चरणों में पूर्ण संसक्ति की प्राप्ति के लिए करते हैं ।

पद –4 : शिवजी की सहज दानशीलता तथा अहैतुकी कृपा का कवि इस पद में वर्णन करते हैं । शिव स्तुति का प्रकारान्तर गान उनके माहात्म्य का गान है ।

पद –5 : व्यंगोक्ति माध्यम है । शिव की सहज दानशीलता के परिणाम स्वरूप उत्पन्न विसंगति के माध्यम से उनका यशोगान करना यहाँ कवि का मन्तव्य है ।

पद -6 : शिवजी की सामर्थ्य की ओर इंगित करना कवि का मन्तव्य है । इस स्तुति का मूल मन्तव्य श्रीराम की निर्मल भक्ति की याचना है । शिव स्तुति माध्यम है । साध्य है, उसके द्वारा प्राप्त राम भक्ति ।

पद - 7 : आर्त्त स्वर से भरा तुलसी का यह विनय स्तवन है । इस स्तुति के द्वारा राम के प्रति अपनी गहन आस्था की संपुष्टि के लिए शिव से वे याचना करते हैं । श्रीराम के स्वरूप को समझने के लिए द्वैतजनित भेदबुद्धि बाधक है ; इस लिए उसकी समाप्ति की यहाँ तुलसी प्रार्थना करते हैं ।

पद - 8 : तुलसी शिव के इस स्त्रोत में कलियुग द्वारा उत्पन्न आधिभौतिक बाधा से मुक्ति की कामना करते हैं । इस प्रकार के कई संदर्भ कवितावली में प्राप्त हैं । वे कलियुग को मना करने के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं । ताकि उनके कार्य में किसी भी प्रकार का विघ्न उत्पन्न न हो सके ।

पद -9 : शिव के माहात्म्य का स्मरण करता हुआ इस स्तुति के माध्यम से कवि विष्णु राम की आसक्ति की याचना करते हैं ।

पद -10 : शिव सम्बन्धी यह स्त्रोत त्रोटक शैली के अन्तर्गत संस्कृत साहित्य की स्तोत्र शैली परंपरा से सम्बन्धित है । इसमें शिव की स्तुति श्रीराम की शरणागति प्राप्ति के लिए की गई है ।

पद -11 : भगवान भूत भावन का प्रलयंकरी रूप शिव रूप से भिन्न है और समस्त विघ्नों के विनाश के लिए यह भैरवरूप शिव विग्रह - आराध्य माना जाता है । यहाँ कवि भी शिव के इस भैरव रूप का स्मरण करता हुआ संत्रास से मुक्ति की याचना करते हैं । इसमें शिव की भैरव रूप की वन्दना मूलाधार है ।

पद -12 : शिव की स्तुति है । शैली स्तोत्र की है । इस स्तोत्र का मन्तव्य शिव का गुणानुवाद एवं उनकी कृपा से उनकी अनुकूलता प्राप्त करना है ।

पद -13 : कवि अपने संताप विनाशक शिव की आर्त्त भाव से स्तुति कर रहे हैं और इस स्तुति का लक्ष्य भव त्रास से शांति प्राप्त करना है ।

पद -14 : वन शिव का प्रतीक है और प्रतीक के उल्लास के माध्यम से कवि प्रकृति के साथ सादृश्य का वर्णन करनते हैं । उनके अर्धांग में विराजमान पार्वती बसन्त रूप में उन्हें देखने के लिए आतुर है ।

पद -15 : कवि दुर्गा की स्तुति करते हुए उससे अक्षय एवं अनन्य प्रेम की याचना करते हैं ।

पद -16 : इस स्तुति में कवि माँ दुर्गा का स्मरण करते हैं और राम भक्ति की उनसे याचना करते हैं ।

पद -17 : इस पद में कवि गंगा की स्तुति करते हैं । कवि गंगा से आत्मिक संदर्भ जोड़ते हुए उस सम्बन्ध को श्रीरामाभिमुखी करते हैं । इसकी मूल याचना श्रीराम की भक्ति है ।

पद -18 : इस पद में भी कवि गंगा की स्तुति करते हैं ; निर्भर रामभक्ति के लिए । परंपरित शैली के अंतर्गत इस स्तुति का संदर्भ संत्रास से मुक्ति और रामभक्ति की याचना है ।

पद -19 : कवि इस पद में गंगा की स्तुति करते हैं । इसमें कवि गंगा के उद्धार सामर्थ्य का चित्रण कर रहे हैं । कवि इसमें दास्यभक्ति के संदर्भ को व्यंजित कर रहे हैं ।

पद -20 : कवि ने इस पद में अपनी काव्यवाणी की निर्मलता के लिए गंगा स्तुति की है ।

2.12 अभ्यास प्रश्न :

❋ दीर्घ उत्तर मूलक प्रश्न :

1. विनय पत्रिका में भक्ति का जैसा पूर्ण परिपाक हुआ है वैसा अन्यत्र नहीं - इस कथन की सार्थकता पर विचार कीजिए ।
2. विनय पत्रिका के आधार पर तुलसी की भक्ति पर प्रकाश डालिए ।
3. विनय पत्रिका के आधार पर तुलसी के दार्शनिक विचारों को स्पष्ट कीजिए ।
4. 'विनय पत्रिका ' तुलसी का एक श्रेष्ठ ग्रंथ है - प्रमाणित कीजिए ।
5. गीति काव्य की दृष्टि से विनय पत्रिका की समीक्षा कीजिए ।

❋ आलोचनात्मक प्रश्न :

1) तुलसी की भाषा में प्रवहमानता है - क्यों ?
2) तुलसी की भक्ति विनय के पदों में जैसा स्पष्ट है वैसा अन्यत्र नहीं - क्यों ?
3) विनय पत्रिका के भावपक्ष पर एक लेख लिखिए ।
4) विनय पत्रिका के आधार पर तुलसी के कला-पक्ष की चर्चा कीजिए ।

❋ लघूत्तरी प्रश्न

स प्रसंग व्याख्या कीजिए :

1) सावरो ..... मुसुकानि ।
2) हरति पाप त्रिविध ताप ..... कैसे तरित ।
3) सिव-सिव ! होइ ..... अविनासी ।
4) देव मोह तम तरणि ..... लावण्य धाम ।

2.13 संदर्भ ग्रंथ :

* विनय पत्रिका - गीता प्रेस, गोरखपुर

* हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

* गोस्वामी तुलसीदास कृत विनय पत्रिका - डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिंह ।

* हिन्दी साहित्य की भूमिका - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

* हिन्दी साहित्य कोश - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा - डॉ. माताप्रसाद गुप्त की विनय पत्रिका पर टिप्पणी ।

1) तुलसी ग्रंथावली - सं. रामचन्द्र शुक्ल

2) विनय पत्रिका - गीता प्रेस गोरखपुर ।

3) तुलसी और उनका काव्य - डॉ. रामदत्त भारद्वाज

4) तुलसी दर्शन मीमांसा - डॉ. उदयभानु सिंह

5) तुलसीदास - चंद्रवली पाण्डेय ।

Unit -III

(क)गीतावली

3. (क)गीतावली

- 3.1 ग्रंथ परिचय
- 3.2. रचनाकाल
- 3.3. विषय
- 3.4 भाव पक्ष
- 3.5 कला पक्ष
- 3.6 अलंकार
- 3.7 मूल पाठ
- 3.8 शब्दार्थ
- 3.9 अभ्यास प्रश्न
- 3.10 संदर्भ ग्रंथ

Unit -III
(क)गीतावली

3.1 ग्रंथ परिचय :

यह रचना राग रागिनियों में है और इसमें कांड क्रम से रामचरित्र वर्णित है । यह शुद्ध ब्रजभाषा में है । यह कृष्णभक्त कवियों की शैली पर वैसी ही सरस तथा मनोरम है । इसमें बाललीला तथा रामराज्य के सुख, ऐश्वर्य का विस्तार से वर्णन है और अन्य का संक्षिप्त । कुछ पद ऐसे भी हैं जो सूरदास की प्रतिलिपि मात्र हैं और केवल राम, श्याम, तुलसी आदि का हेरफेर है । हो सकता है तुलसी ने ऐसा किया हो । इसमें तुलसी की ललित पदरचना है । कवितावली से अधिक तारतम्य पूर्ण घटना संगठन है । कथानक की दृष्टि से गीतावली रामचरित मानस से भिन्न है । इसका प्रमुख आकर्षण कथानक नहीं, भावसंपत्ति है । इसमें श्रृंगार, वीर, करुण आदि रसों की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है । वात्सल्यरस का भी इसमें वर्णन है । अनेक मार्मिक प्रसंग इसकी काव्यसंपत्ति है । तुलसी की रचनाओं में इस रचना का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

3.2 रचनाकाल :

पं. रामनरेश त्रिपाठी इसका रचनाकाल सं. 1625 से 1628 तक मानते हैं । वे इसे तुलसी की छात्रावस्था के समय में ही रचित पदों का संग्रह मानते हैं । डॉ. रामदत्त भरद्वाज अपने ग्रंथ 'गोस्वामी तुलसीदास ; व्यक्तित्व, दर्शन, साहित्य' में इसका रचनाकाल सं. 1643 से 1650 के अन्तर्गत मानते हैं । डॉ. माताप्रसाद गुप्त इसके रचना काल को सं. 1665 मानते हैं । डॉ. गुप्त के मत को अधिकांश आलोचक समीचीन बताते हैं ।

3.3 विषय :

गीतावली का प्रारंभ रामजन्मोत्सव से होता है । आरंभ से 46 पदों में उन्होंने राम की बाललीला का वर्णन किया है । तदनंतर विश्वामित्र का आगमन, उनके द्वारा यज्ञ का रक्षण, अहल्योद्धार आदि का वर्णन करते हुए जनकपुर में सीता स्वयंवर का वर्णन किया है । फुलवारी में राम-सीता के हृदय में एक दूसरे को देखकर प्रेमोदय तथा धनुष-यज्ञ का अत्यंत विस्तार से वर्णन किया गया है । सभादि के साथ विवाह का वर्णन करते हुए बालकाण्ड का समापन किया गया है ।

अयोध्याकांड में राम -राज्याभिषेक का वर्णन करते हुए कवि तुरन्त वनगमन प्रसंग पर आ जाते हैं । सीता और लक्ष्मण के साथ राम का वनगमन, ग्राम्यवन सौन्दर्य द्वारा प्रभावित होने का वर्णन, चित्रकूट के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन, भरत-राम मिलाप, भरत का नंदिग्राम -निवास तथा कौशल्या का परिताप आदि अनेक प्रसंग वर्णित हैं ।

अरण्यकांड में वन-विहार, मारीचवध, सीताहरण, जटायुवध, राम-वियोग, शबरी मिलन आदि अनेक घटनाओं का वर्णन है ।

किष्किन्धा कांड में राम-सुग्रीवमैत्री तथा सीता की खोज के आदेश का वर्णन किया गया है ।

सुन्दर काण्ड में हनुमान का अशोकवाटिका गमन, राम की मुद्रिका सीता को प्रदान, सीता हनुमान भेंट, हनुमान रावण भेंट तथा विभीषण - शरणगति का वर्णन है ।

लंकाकांड में रावण को पत्नी मनादोदरी की शिक्षा, अंगद का दूतकार्य, लक्ष्मण का आहत होना, हनुमान द्वारा संजीवनी लाना, राम विजय, राम-राज्याभिषेक आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है ।

उत्तरकांड में राम-सौन्दर्य, वसंत- विहार, सीता- वनवास, लवकुश- जन्म का वर्णन करके एक पद में रामकथा का सिंहावलोकन कर दिया गया है ।

देखा गया है कि 'गीतावली' में कथानक शृंखलाबद्ध नहीं है । राम के जीवन संबंधित अनेक घटनाओं को छोड़ दिया गया है । इसका कथानक अनेक स्थानों में मानस से भिन्न है और बाल्मीकि रामायण से प्रभावित जान पड़ता है । मानस की अपेक्षा अशोकवाटिका का प्रसंग इसमें मौलिक है । इसमें सीता-मुद्रिका संवाद स्वतंत्र है तथा अस्वाभाविक भी । इन सब वर्णनों और विषय वैविध्य के कारण गीतावली एक उत्कृष्ट रचना है ।

3.4 भावपक्ष :

सौन्दर्य -वर्णन अत्यंत मार्मिक है । बालक राम, किशोर राम, दुलहा राम, दुलहन -सीता वन पथ -पथिका- राम -लक्ष्मण-सीता तथा राजा राम के सौन्दर्य वर्णन से ओतप्रोत यह काव्य ग्रंथ है । अत्यंत मनोरम कल्पनाओं से मंडित चित्र प्रस्तुति में भावपक्ष अत्यंत सबल हुआ है ।

इस ग्रंथ का प्रारंभ रामजन्ममहोत्सव से होता है । बालक राम के प्रति पितामाता के हृदय की मधुर भावनाओं का वर्णन है । माताएँ बालकों की विभिन्न चेष्टाओं को देखकर आनन्द विभोर हो जाती हैं । उनकी सखियाँ उन्हें सम्बोधित करती हुई कहती हैं -

''नेकु विलोकि धौं रघुबरनि ।
परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि,

गिरि -गिरि वरनि ॥

झुकनि, झाँकनि, छाँहसों किलकनि, नटनि, हठि लरनि ।

तोतरी बोलनि, बिलोकनि, मोहिनी, मन -हरनि ॥'' (1.18)

बालकों की क्रीड़ाएँ परिवार के प्रत्येक सदस्य को आनन्द से आन्दोलित करती हैं । इस प्रकार बालकों का सौन्दर्य मन को आनन्द से भर देता है । कवि ने जन्म से लेकर क्रमश: प्रत्येक अवस्था के सौन्दर्य का जो वर्णन किया है, वह अत्यन्त दुर्लभ है । दास्य भाव की भक्ति होने के कारण गीतावली में उनके अराध्य बालक होते हुए भी स्वामी हैं । अत: तुलसी के वर्णन में दास और स्वामी की दूरी एवं मर्यादा है । राम क्षत्रिय हैं और कृष्ण सामान्य नागरिक के बालक । इसी कारण राम की बालक्रीड़ाएँ और उनका लालन पालन मर्यादा से नियंत्रित है । उन्हें प्रकृति में सामान्य बालकों के साथ स्वच्छन्द होकर खेलने का अवसर नहीं मिला । इसलिए शायद तुलसी के बालवर्णन में सूर के वात्सल्यवर्णन की तरह हृदयग्राही शक्ति नहीं ।

राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ चले जाने के बाद वियोग वात्सल्य का आरंभ होता है । माता उनके लिए चिंताग्रस्त हो जाती है । क्योंकि राजपाट में पालित ये सुकुमार बालक और कहाँ दुर्गम वन ? ये दोनों बाल संकोचशील स्वभाव वाले हैं । वे चिंता करने लगती हैं -

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहहिंगे ?

भूख-प्यास, सीत, सम सकुचति क्यों कौसिकहिं कहाहिंगे ?

को भोर ही उबीर अन्हवे हैं, काढ़ि कलेऊ दैहै ?

को भूषण पहिराइ, निछावरि करि लोचन सुख लै हैं ? (1.99)

विश्वामित्र के लिए जो अजेय बालक, वीर एवं भगवान अवतार हैं, माँ कौशल्या के लिए वे शिशु ही हैं । माँ का हृदय इनके विछोह में व्याकुल हो उठता है । वियोग का दूसरा अवसर वन-गमन के अनन्तर आता है । तब तक ये राम किशोरावस्था को पार कर चुके थे । फिर भी माँ के हृदय के लिए वे बालक ही तो हैं । राम माँ की इस दशा को देखकर व्याकुल हो उठते हैं शीघ्र लौट आने का आश्वासन देकर माँ को सांत्वना देते हैं । चित्रकूट से लौटने के बाद माता की वेदना दुगुनी हो जाती है । यहाँ का वर्णन अत्यंत हृदयद्रावक है । यहाँ कवि मातृहृदय को व्यंजित करने में काफी सफल प्रतीत होते हैं । मातृ वात्सल्य के चित्रण में तथा मातृहृदय की भावनाओं को व्यंजित करने में कवि सफल रहे हैं ।

गीतावली में शृंगार रस का चित्रण भी कवि ने मनोयोग से किया है । इसमें कवि ने राम के सौन्दर्य की प्रत्येक अवस्था का वर्णन किया है । राम-सीता के वर्णन में उन्होंने कहा है -

दूलह राम सीय दुलही री ।

घन-दामिनि बर वरन हरन मन सुन्दरता नख-सिख निबही री ।

सुषमा-सुरभि -सिंगार-छीर दुहि नयन अमियमय कियौ है दही री ।

* * *

रूप-राजि बिरची विरंचि मनो, सिला लवनि रति-काम लही री । (1.106)

पुष्प वाटिका में पुष्पचयन करती हुई राम की ओर देख कर जानकी प्रेम विभोर हो जाती है । राम भी उनकी ओर देखकर प्रेम में डूब जाते हैं । तुलसी वर्णन करते हैं और उनके प्रेमोदय का वर्णन करने में अपने को असमर्थ पाते हैं -

''निरखिर लषन राम - जाने ऋतु पति काम

मोहि मनो मदन मोहिनी मूड़ नाई हैं ।

राघौ जू-श्री जानकी - लोचन मिलिवे को मोद

कहिबे को जोगुन, मैं बातें-सी बनाई हैं ॥''

अपने आराध्य का प्रेम वर्णन भला तुलसी कैसे कर सकते । विवाह के अनंतर कवि ने संयोग श्रृंगार का अधिक वर्णन नहीं किया है । कवि ने मर्यादा का उल्लंघन कहीं भी नहीं किया है । मर्यादा के अनुकूल जितना भी वर्णन किया है वह अनुपम है और कवि-प्रतिभा का उत्तम निदर्शन है ।

संयोग की अपेक्षा वियोग श्रृंगार वर्णन गीतावली में अधिक मार्मिक है । अशोक वाटिका में सीता का विरह वर्णन दर्शनीय है । विरह में सीता दिन-रात राम -राम रटती रहती है । सीता की व्यथा का मार्मिक वर्णन करते हुए कवि कहते हैं-

कबहूँ कपि ! राघव आवहिंगे ?

मेरे नयन -चकोर प्रीतिबस राका -ससि-सुख बिखरावहिंगे ।

विरह -अगिनि जरि रहील ता ज्यौं कृपा दृष्टि जल पलुहावहिंगे ॥ (5-10)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी के विरहवर्णन के बारे में कहा है - भारत की कूलवधू का विरह आवारा आसिकों माशूकों का विरह नहीं है वह जीवन के गांभीर्य को लिये हुए रहता है । यह पृथ्वी का भार उतारने वाला विरह है । (गोस्वामी तुलसीदास -पृ. -102 -103)

विभिन्न अनुभवों द्वारा तुलसी ने राम की व्यथा की बड़ी मार्मिक व्यंजना की है ।

अन्य रसों में करुण रस को भी तुलसी ने महत्व दिया है । दशरथ -मरण, जटायु -भेंट, लक्ष्मण शक्ति भेद तथा सीता-त्याग के प्रसंग करुण रस से ओतप्रोत हैं । तुलसी की भाषा में -

तात मरण, तिय -हरण, गीध -बध -भुज दाहिनी -गँवाई ।

तुलसी मैं सब भाँति अपने कुलहि कालिमा लाई ॥ (6-6)

गीतावली हर दृष्टि से देखाजाय तो एक चरित काव्य ठहरता है । इसमें तुलसी की भक्ति स्थान -स्थान पर देखने को मिलती है ।

राम की उदारता और भक्तवत्सलता का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं -

गये राम सरन सब कौ भलो ।

गनी गरीब, बड़ो-छोटो, बुध -मूढ़ हीन -बल अति बलो ॥ (5-42)

इस प्रकार देखा जाय तो भक्तिरस का पूर्ण परिणाक 'गीतावली' में जैसा हुआ है वह अपने आपमें अनोखा है । गीतावली में तुलसी का प्रकृति -प्रेम भी देखा जा सकता है । यह प्रकृति मानवीय भावनाओं के अनुकूल प्रतिभासित होती हुई दिखाई देती है । सीताहरण के बाद प्रकृति दीनहीन उदासीन हो जाती है । तुलसी कहते हैं -

सरित जल-मलिन, मरनि सूखे नलिन,

अलि न गुंजत, कल कूजैं न मराल ।

तरू जे जानकी लाए, ज्यापे हरि-करि कपि,

हेरैं हुंकरि, झरैं न फल रसाल ॥ (3-9)

वर्षा ऋतु में प्रकृति का सौन्दर्य वर्णन करते हुए कवि कहते हैं -

सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रंगभगे सृंगनि,

मनहु आदि अम्भोज विराजत सेवित सुर-मुनि भृंगनि ।

* * *

इन वर्णनों के काण गीतावली में तुलसी का भावपक्ष अत्यंत सबल और चित्ताकर्षक हो उठा है ।

3.5 कला पक्ष :

गीतावली की भाषा ब्रजभाषा है । सिर्फ भाषा नहीं साहित्यिक ब्रजभाषा के उत्कृष्ट उदाहरण इसमें भरपूर हैं । भाषा -सौष्ठव की रक्षा के लिए तुलसी ने संस्कृत तत्सम शब्दों को अपनाया है । यथा कलिन्दनदिनी, चंचरिक, द्विज आदि तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है । कहीं-कहीं समासों का भी प्रयोग किया है । जैसे बाल-विनोद- मोद-मंजुल-मनि, नयन-कमल-कल-कलस, रामचन्द्र -मुख -सुधा -छवि आदि । संस्कृत के अलावा अरबी-फारसी के प्रचलित शब्दों का भी निस्संकोच प्रयोग किया है । जैसे, निसान, सिरताज, खसम, कसम, अकस आदि । गीतावली में मुहावरों और कहावतों का विरल प्रयोग देखने को मिलता है । जैसे -'तज्यो दूध माखी ज्यों', 'ठग के से लाडू खाये' आदि । गीतावली में वाच्यार्थ ही प्रधान है । लक्ष्यार्थ व्यंग्यार्थ के भी प्रयोग हुए हैं ।

3-6 अलंकार :

कवि ने अपने भावों की संप्रेषणीयता के लिए विविध अलंकारों का भी आश्रय लिया है । कवि को अनुप्रास अलंकार अधिक प्रिय लगा है -

जैसे - जयमाल जानकी -जलज कर लई है ।

सुमन सुमंगल सगुन की बनाई मंजु मानहु मदन-माखी आपु निरभई है । (1-96)

शब्दचित्र अंकित करते हुए -

झुंझनु -झुंझनु पायँ पैंजनी मृदु मुखर ॥ (1-33)

यमक अलंकार का प्रयोग भी मनोहर है -

भए विदेह विदेह नेह बस देह दसा विसराए । (1-65)

यमक-शब्दालंकार के प्रयोग में कवि जैसे सफल रहे हैं वैसे अर्थालंकार प्रयोग में भी उन्हें सफलता मिली है -

मथि माखन सिय राम संवारे,

सकल भुवन छवि मनहुँ मही री ॥(1-106)

उनके अनुप्रास में प्रसाद और माधुर्य गुण मुख्य हैं । दोनों मिलकर भाव को भव्यता प्रदान करते हैं ।

उपमा - का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं -

नील पीत नीरज -कनक -मरकत घन -दामिनी,

बरन -तनु रूप के निचोर हैं । (1-73)

विशेषोक्ति के वर्णन में भी तुलसी की कुशलता अवलोकनीय है ।

तुलसी तेहि सुख-सिन्धु कौसिला,

मगन पै प्रेम -पियासी ।

इस प्रकार देखा जाता है कि कवि शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों के प्रयोग में सिद्धहस्त थे । इस काव्य में प्रगीति काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं । इस दृष्टि से गीतावली एक उत्कृष्ट रचना है ।

3.7 गीतावली (1-20 पद)

(मूल पाठ)

राग आसावरी

आजु सुदिन सुभ घरी सुहाई
रूप-सील-गुन-धाम राम नृप-भवन प्रगट भए आई ॥१॥
अति पुनीत मधुमास, लगन ग्रह वार जोग समुदाई ।
हरषवंत चर अचर भूमिसुर तनरुह पुलक जनाई ॥२॥
बरषहि बिबुध-निकर कुसुमावलि नभ दुंदुभी बजाई ।
कौसल्यादि मातु मन हरषित, यह सुख बरनि न जाई ॥३॥
सुनि दसरथ सुत जन्म लिए सब गुरु जन बिप्र बोलाई ।
वेद-विहित करि क्रिया परम सुचि, आनन्द उर न समाई ॥४॥
सदन बेद धुनि करत मधुर मुनि, बहु बिधि बाज बधाई ।
पुरबासिन्ह प्रिय नाथ हेतु निज निज संपदा लुटाई ॥५॥
मनि, तोरन, बहु केतु पताकनि पुरी रुचिर करि छाई ।
मागध सूत द्वार बंदीजन जहँ तहँ करत बड़ाई ॥६॥
सहज सिंगार किए बनिता चली मंगल बिपुल बनाई ।
गावहिं देहिं असीस मुदित चिरजिवों तनय सुखदाई ॥७॥
बीथिन्ह कुंकुम कीच, अरगजा अगर अबीर उड़ाई ।
नाचहिं पुर-नर-नारि प्रेम भरि देहदसा बिसराई ॥८॥
अमित धेनु गज तुरग बसन मनि जातरूप अधिकाई ।
देत भूप अनुरूप जाहि जोइ, सकल सिद्धि गृह आई ॥९॥
सुखी भए सुर, संत, भूमिसुर खलगन मन मलिनाई ।
सबइ सुमन विकसित रवि निकसत, कुमुद-विपिन बिलखाई ॥१०॥
जो सुख सिंधु-सकृत -सीकर तें सिव बिरंचि प्रभुताई ।
सोई सुख अवध उमंगि रह्यो दस दिसि कौन जतन कहौं गाई ॥११॥

जे रघुबीर चरन चिंतक तिन्हकी गति प्रगट दिखाई ।
अविरल अमल अनूप भगति दृढ़ तुलसिदास तब पाई ॥१२॥

राग जैतश्री

सहेली, मनु सोहिलो रे !
सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो सोहिलो सब जग आज ।
पूत सपूत कौसिला जायो, अचल भयो कुलराज ॥१॥
चैत चारु नौमी तिथि, सितपख, मध्य-गगन -गत भानु ।
नखत जोग ग्रह लगन भले दिन मंगल मोद निधानु ॥२॥
ब्योम पवन पावक जल थल दिसि दसहु सुमंगल मूल ।
सुर दुंदुभी बजावहिं, गावहिं, हरषहिं, बरषहिं फूल ॥३॥
भूपति सदन सोहिलो सुनि वाजैं गहगहे निसान ।
जहँ तहाँ सजहिं कलस धुज चामर तोरन केतु बितान ॥४॥
सींचि सुगंध रचैं चौके गृह आंगन गली- बजार ।
दल फल फूल दूब दधि रोचन घर घर मंगलचार ॥५॥
सुनि सानन्द उठे दसस्यंदन सकल समाज समेत ।
लिए बोलि गुरु सचिव भूमिसुर प्रमुदित चले निकेत ॥६॥
जातकर्म करि पूजि पितर सुर, दिए महिदेवन दान ।
तेहि आसर सुत तीनि प्रगट भए मंगल , मुद कल्यान ॥७॥
आनन्द महं आनन्द अवध, आनन्द बधावन होई ।
उपमा कहौं चारि फल की, मोहिं भलो न कहं कबि कोइ ॥८॥
सच आरती बिचित्र थार कर जूथ जूथ बरनारि ।
गाबत चली बधावन लै लै निज निज कुल अनुहारि ॥९॥
असही दुसही मरहु मनहिं मन, बैरिन बढहु बिषाद ।
नृपसुत चारि चारु चिरजीवहु संकर-गौरि-प्रसाद ॥१०॥
लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले भाँति भाँति भरि भार ।
करहिं गान करि आन राय की, नाचहिं राजदुवार ॥११॥

गज, रथ, बाजि, बाहिनी, बाहन सबनि संवारे साज ।
जनु रतिपति रितुपति कोसलपुर बिहरत सहित समाज ॥१२॥
घंटा घंटि पखाउज आउज झांझ बेनु डफ तार ।
नूपुर धुनि, मंजीर मनोहर, कर कंचन-झनकार ॥१३॥
नृत्य करहिं नट-नटी, नारि नर अपने अपने रंग ।
मनहुँ मदन -रति विविध बेष धरि नटत सुदेस सुढंग ॥१४॥
उघटहिं छंद प्रबंध गीत पद राग तान बंधान ।
मुनि किन्नर गंधर्ब सराहत, बिथके हैं बिबुध -विमान ॥१५॥
कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं भरहिं गुलाल अबीर ।
नभ प्रसून झरि, पुरी कोलाहल, भइ मनभावति भीर ॥१६॥
बड़ी वयस बिधि भयो दाहिनो सुर-गुरु-आसिरबाद ।
दसरथ सुकृत -सुधासागर सब उमगे हैं तजि मरजाद ॥१७॥
ब्राह्मण बेद, बंदि विरदावलि , जय धुनि मंगल गान ।
निकसत पैठत लोग परसपर बोलत लगि लगि कान ॥१८॥
बारहिं मुकुता रतन राजमहिषी पुर-सुमुखि समान ।
बगरे नगर निछावरि मनिगन जनु जवारि जब धान ॥१९॥
कीन्हि बेदविधि लोकरीति नृप, मंदिर परम हुलास ।
कौसल्या कैकयी सुमित्रा रहस-बिबस रनिवास ॥२०॥
रानिन दिए बसन मनि भूषन, राजा सहन -भंडार ।
मागध सूत भाट नट जाचक जहँ तहँ करहिं कबार ॥२१॥
विप्रवधू सनमानि सुआसिनि, जन पुरजन पहिराइ ।
सनमाने अवनीस, असीसत ईस रमेस मनाइ ॥२२॥
अष्टसिद्धि नवनिद्धि भूति सब भूपति भवन कमाहिं ।
समउ समाज राज दसरथ को लोकन सकल सिहाहिं ॥२३॥
को कहि सकै अवधवासिन को प्रेम प्रमोद उछाह ।
सारद सेस गनेस गिरीसहिं अगम, निगम अवगाह ॥२४॥
सिव विरंचि मुनि सिद्ध प्रसंसत बड़े भूप के भाग ।
तुलसिदास प्रभु सोहिलो गावत उमगि उमगि अनुराग ॥२५॥

राग बिलावल

आजु महामंगल कोसलपुर सुनि नृप के सुत चारि भए ।
सदन सदन सोहिलो सोहावन नभ अरु नगर निसान हुए ॥१॥
सजि सजि जान अमर किन्नर मुनि जानि समय सुभ गान ठए ।
नाचहिं नभ अपसरा मुदित मन पुनि पुनि बरषहिं सुमन चए ॥२॥
अति सुख बेगि बोलि गुरु भूसुर भूपति भीतर भवन गए ।
जातकरम करि, कनक बसन, मनिभूषित सुरभि समूह दए ।।३॥
दल फल फूल दूब दधि रोचन जुबतिन्ह भरि भरि थार लए ।
गावत चलीं भीर भइ बीथिन्ह, बंदिन्ह बांकुरे बिरद बए ॥४॥
कनक -कलक चामर पताक धुज जहँ -जहँ बंदनवार नए ।
भरहिं अबीर, अरगजा छिरकहिं, सकल लोक एक रंग रए ॥५॥
उमंगि चल्यौ आनन्द लोक तिहुँ, देत सबनि मंदिर रितए ।
तुलसिदास पुनि भरेइ देखियत, रामकृपा चितवनि चितए ॥६॥३॥

राग जैतश्री

गावैं बिबुध विमल बरबानी ।
भुवन कोटि कल्यान-कंद जो जायो पूत कौसिला रानी ॥१॥
मास पाख तिथि बार नखत ग्रह जोग लगन सुभ ठानी ।
जल थल गगन प्रसन्न साधु मन, दस दिसि हिय हुलसानी ॥२॥
बरषत सुमन बधाव नगर नभ, हरष न जात बखानी ।
ज्यों हुलास रनिवास नरेसहिं त्यों जनपद रजधानी ॥३॥
अमर नाग मुनि मनुज सपरिजन विगतविषाद -गलानी ।
मिलेहि मांझ रावन रजनीचर लंकसंक अकुलानी ॥४॥
देव पितर गुरु विप्र पूजि नृप दिए दान रुचि जानी ।
मुनि -बनिता, पुरनारि सुआसिनि सहस भाँति सनमानी ॥५॥
पाइ अघाइ असीसत निकसत जाचक जन भए दानी ।

यों प्रसन्न कैकयी सुमित्रहि होउ महेस भवानी ॥६॥
दिन दूसरे भूप-भामिनि दोउ भईं सुमंगल-खानी ।
भयो सोहिलो सोहिलो मो जनु सृष्टि सोहिलो-सानी ॥७॥
गावत नाचत, मो मन भावत सुख सो अवध अधिकानी ।
देत लेत पहिरत पहिरावत प्रजा प्रमोद -अघानी ॥८॥
गान निसान कोलाहल कौतुक देखत दुनी सिहानी ।
हरि-विरंचि -हर -पुर सोभा कुलि कोसलपुरी लोभानी ।।९॥
आनन्द अवनि, राजरानी सब मांगहु कोखि जुड़ानी ।
आसिष दै दै सरहहिं नादर उमा रमा ब्रह्मानी ॥१०॥
बिभव-बिलास बाढ़ि दसरथ की देखि न जिनहिं सोहानी ।
कीरति, कुसल, भूति, जय, रिधि, सिधि तिन्ह पर सवै कोहानी ॥११॥
छठी बारही लोक-बेद-बिधि करि सुविधान बिधानी ।
राम लखन रिपुदवन भरत धरे नाम ललित गुरु ज्ञानी ।।१२॥
सुकृत-सुमन तिल -मोद बासि बिधि जतन -जंत्र भरि थानी ।
सुख सनेह सब दियो दसरथहिं खरि खलेल थिरथानी ॥१३॥
अनुदित उदय उछाह उमग जग, घर घर अवध कहानी
तुलसी राम -जनम-जस गावत सो समाज उर आनी ॥१४॥ ॥४॥

राग केदारा

घर घर अवध बधावने मंगल साज समाज ।
सगुन सोहावन मुदित मन कर सब निज निज काज ।
छं.- निज का सजत सँवारि पुर-नर-नारि रचना अनगनी ।
गृह, अजिर, अटनि, बजार, बीथिन्ह, चार-चौकैं विधि घनी ॥
चामर, पताक, बितान, तोरन, कलस, दीपाबलि बनी ।
सुख-सुकृत -सोभामय पुरी बिधि सुमति -जननी जनु जनी ॥१॥
दो. - चैत चतुरदसि चाँदनी, अमलु दित निसिराज ।

अडुगन अवलि प्रकासहीं, उमगत आनन्द साज ॥

छं.- आनन्द उमगत आजु, बिबुध विमान विपुल बनाइकै ।
गावत, बजावत, नटत, हरषत, सुमन वरषत आइ कै ॥
नर निरखि नभ, सुर देखि पुरछबि, परसपर सचु पाइकै ।
रघुराज-साज सराहि लोचन -लाहु लेत अघाइकै ॥२॥

दो.- जागिय राम छटी सजनि रजनी रुचिर निहारि ।
मंगल मोदमढ़ी मुरति नृप के बालक चारि ॥

छं.- मूरति मनोहर चारि बिरचि बिरंचि परमारथभई ।
अनुरूप भूपति जानि पूजन-जोग बिधि संकर दई ॥
तिन्हकी छठी, मंजुलमठी, जग सरन जिन्हकी सरसई ।
किए नींद भामिनि जागरन, अभिरामिनी जामिनि भई ॥३॥

दो. सेवक सजग भए समय, साधन सचिव सुजान ।
मुनिवर सिखए लौकिकौ वैदिक विविध विधान ॥

छं.- बैदिक विधान अनेक लौकिक आचरत मुनि जानिकै ।
बलिदान पूजा मूल कामिनि साधि राखीं आनिकै ॥
जे देव देवी सेइयत हित लागि चित सनमानिकै ।
ते जंत्र मंत्र सिखाइ राखत सबनि सों पहिचानिकै ॥४॥

दो. सकल सुआसिनि गुरूजन पुरजन पाहनलोग ।
बिबुध-बिलासिनि सुर मुनि जाचक जो जेहि जोग ॥

छं.- जेहि जोग जे तैहि भाँति ते पहिराइ परिपूरन किए ।
जय कहत देत आसीस तुलसीदास ज्यों हुलसत हिए ॥
ज्यों आजु कालिहू परहूँ जागन होहिंगे नेबते दिए ।
ते धन्य पुन्य-पयोधि जे तेहि समै सुख-जीवन जिए॥५॥

दो.- भूपति भाग बलि सुरबर नाग सराहि सिहांहिं ।
तिय-बरबेष अली रमा सिधि अनिनादि कमाहिं ॥

छं.- अनिमादि, सारद, सैलनंदिनी बाल लालहिं पालहिं ।
भरि जनम जे पाए न ते परितोष उमा रमा लहीं ॥

निज लोक बिसरे लोकपति, घर की न चरचा चालही ।
तुलसी तपत तिहूँ जग, जनु प्रभुछठी छाया लही ॥६॥५॥

राग जैतश्री

बाजत अवध गहागहे आनन्द -बधाए ।
नामकरन रघुबरनि के नृप सुदिन सोधाए ॥
पाय रजायसु राय को रिषिराज बोलाए ।
सिष्य सचिव सेवक सखा सादर सिर नाए ॥
साधु सुमति समरथ सबै सानन्द सिखाए ।
जल, दल, फल मनि-मूलिका, कुलि काज लिखाए ॥१॥
गनप गौरि हर पूजिकै गोबृंद दुहाए ।
घर घर मुद मंगल महा गुन-गान सुहाए ॥
तुरत मुदित जहँ तहँ चले मन के भए भाए ।
सुरपति-सासनु घन मनौ मारुत मिलि धाए ॥२॥
गृह आँगन चौहट गली बाजार बनाए ।
कलस चंवर तोरन धुजा सुबितान तनाए ॥
चित्र चारु चौकैं रचो लिखि नाम जनाए ।
भरि भरि सरबर बापिका अरगजा सनाए ॥३॥
नर-नारिन्ह पल चारि में सब साज सजाए ।
दसरथपुर छबि आपनी सुरनगर लजाए ॥
बिबुध विमान नाइ कै आनंदित आए ।
हरषि सुमन बरषन लगे गए धन जनु पाए ॥४॥
बरे बिप्र चहुँ बेद के रविकुल-गुरु ज्ञानी ।
आपु बसिष्ठ, अथबंणी, महिमा जग जानी ॥
लोक-रीति बिधि बेद की करि कह्यो सुबानी -
'सिसु समेत बेगि बोलिए कौसल्या रानी' ॥५॥
सुनत सुआसिनि लै चली गावत बड़भागीं ।

उमा रमा सारद सची लखि सुनि अनुरागीं ॥
निज रुचि बेष बिरंचि कै हिलिमिलि संग लागीं ।
तेहि अवसर तिहुँ लोक की सुदसा जनु जागीं ॥६॥
चारु चौक बैठत भईं भूप भामिनी सोहैं ।
गोद मोद -मूरति लिए , सुकृती जन जोहैं ॥
सुख सुखमा कौतुक कला देखि सुनि मुनि मोहैं ।
सो समाज कहैं बरनिकै ऐसे कबि को हैं ? ॥७॥
लगे पढ़न रच्छा -रिचा रिषिराज बिराजे ।
गगन सुमन -झरि, जयजय, बहु बाजन बाजे ॥
भए अमंगल लंक में, सब संकट गाजे ।
भुवन-चारिदस के बड़े दुख-दारिद भाजे ॥८॥
बाल बिलोकि अथर्वणी हँसि हरहिं जनायो ।
सुभ को सुभ, मोद मोद को, राम नाम सुनायो ॥
आलबाल कल कौसिला, दल बरन सोहायो ।
कंद सकल आनन्द को जनु अंकुर आयो ॥९॥
जोहि जानि जपि जोरि कै करपुट सिर राखे ।
'जय जय जय करुणानिधे !' सादर सुर भाषे ।
सत्यसंध सांचे सदा जे आखर आखे ।
प्रनतपाल पाए सही जे फल अभिलाषे ॥१०॥
भूमिदेव देखिकै नरदेव सुखारी ।
बोलि सचिव सेवक सखा पट धारि भँडारी ॥
देहू जाहि जोइ चाहिए सनमानि सँभारी ।
लगे देन हिय हरषि कै हेरि हेरि हँकारी ॥११॥
राम -निछावरि लेन को हठि होत भिखारी ।
बहुरि देत तेहि देखिए मानहु धन-धारी ॥
भरत-लखन, रिपुदवनहूँ धरे नाम बिचारी ।
फलदायक फल चारि के दसरथ -सुत चारी ॥१२॥

भए भूप -बालकनि के नाम -निरुपन नीके ।
सबै सोच संकट मिटे तब तें पुर-तीके ॥
सुफल मनोरथ बिधि किए सब विधि सबही के ।
अब होइहै गाए सुन सब के तुलसी के ॥१३॥६॥

राग बिलावल

सुभग सेज सोभित कौसल्या रुचिर राम-सिसु गोद लिए ।
बार बार बिधुवदन बिलोकति लोचन चारु चकोर किए ॥१॥
कबहूँ पौढ़ि पयपान करावति, कबहूँ राखति लाइ हिए ।
बालकेलि गावति हलरावति, पुलकति प्रेम-पियूष पिए ॥२॥
बिधि महेस मुनि सूर सिहात सब, देखत अंबुद ओट दिए ।
तुलसिदास ऐसो सुख रघुपति पै काहू तो पायो न बिए ॥३॥७॥

राग सोरठ

ह्वै हौ लाल कबहिं बड़े बलि भैया ।
राम लखन भावते भरत रिपुदवन चारु चारयो भैया ॥१॥
बाल-बिभूषन-बसन मनोहर अंग नित बिरचि बनैहौं ।
सोभा निरखि निछावरि करि उर लाइ वारने जैहौं ॥२॥
छगन -मगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुक ठुमुक कब धैहौ ।
कलबल वचन तोतरे मंजुल कहि 'माँ' मोहिं बुलैहौ ॥३॥
पुरजन सचिव राउ रानी सब सेवक सखा सहेली ।
लैहैं लोचन -लाहु सुफल लखि ललित मनोरथ -बेली ॥४॥
जा सुख को लालसा लटू सिव, सुक, सनकादि उदासी
तुलसी तेहि सुखसिंधु कौसिला मगन, पै प्रेम-पियासी ॥५॥८॥

पगनि कब चलिहौ चारौ भैया ?

प्रेम -पुलकि उर लाइ सुवन सब कहति सुमित्रा मैया ॥१॥

सुन्दर तनु सिसु-बसन -बिभूषन नखसिख निरखि निकैया ।

दलि तृन, प्रान निछावरि करि करि लेहै मातु बलैया ॥२॥

किलकनि नटनि चलनि चितवनि भजि मिलनि मनोहर तैया ।

मनि-खंभनि प्रतिबिंब-झलक, छबि छलकिहै भरि अँगनैया ॥३॥

बालबिनोद, मोद मंजुल बिधु, लीला ललित जुन्हैया ।

भूपति पुन्य-पयोधि उमंग, घर घर आनन्द बधैया ॥४॥

ह्वैहैं सकल सुकृत -सुख -भाजन लोचन लाहु लटैया ।

अनायास पाइहैं जनमफल तातरे बचन सुनैया ॥५॥

भरत, राम, रिपुदवन, लखन के चरित-सरित अन्हबैया ।

तुलसी तब के से अजहुँ जानिए रघुबर-नगर -बसैया ॥६॥९॥

राग केदारा

चुपरि उबटि अन्हबाइकै नयन आँजे,

रचि रुचि तिलक गोरोचन को कियो है ।

भ्रूपर अनूप मसिबिन्दु, बार बाढ बार,

बिलसत सीस पर हेरि हरै हियो है ॥१॥

मोद -भरी गोद लिये लालति सुमित्रा देखि,

देव कहैं सबको, सुकृत उपबियो है ।

मातु पितु प्रिय, परिजन, पुरजन धन्य,

पुन्यपुंज पेखि पेखि प्रेमरस पियो है ॥२॥

लोहित ललित लघु चरन-कमल चारु,

चाल चाहि सो छबि सुकबि जिय जियो है ।

बालकेलि बातबस झलकि झलमलत

सोभा की दीयटि मानो रूप दीप दियो है ॥३॥

राम-सिसु सानुज चरित चारू गाइ सुनि,
सुजनन सादर जनम-लाहु लियो है ।
तुलसी बिहाइ दसरथ दसचारिपुर,
ऐसे सुखजोग बिधि बिरज्यो न बियो है ।।४॥ ॥१०॥

राम-सिसु गोद-महामोद भर दसरथ,
कौसिलाहु ललकि लखन लाल लए हैं ।
भरत सुमित्रा लए, कैकयी सत्रुसमन,
तन प्रेम-पुलक, मगन मन भए हैं ॥१॥
मेढ़ी लटकन मांनि-कनक-रचित, बाल-
भूषन बनाइ आछे अंग अंग ठए हैं ।
चाहि चुचुकारि चूमि लालत, लावत उर,
तैसे फल पाबत जैसे सुबीज बए हैं ॥२॥
घनओट बिबुध बिलोकि बरखत फुल,
अनुकूल वचन कहत नेह नए हैं ।
ऐसे पितु, मातु, पूत, प्रिय, परिजन विधि,
जानियत आयु भरि येई निरमाए हैं ॥३॥
'अजर अमर होहु' 'करौ हरि हर छोहु'
जरठ जठेरिन्ह आसिरबाद दए हैं ।
तुलसी सराहै भाग तिन्हके जिन्हके हिए,
डिभ-रामरूप -अनुराग -रंग रए हैं ॥४॥ ॥११॥

राग आसावरी

(१२)

आजु अनरसे हैं भोर के, पय पियत न नीके ।
रहत न बैठे ठाढ़े, पालने झुलावतहू, रोवत राम मेरो, सो सोच सबही के ॥
देव, पितर, ग्रह पूजिए तुला लौलिए घी के ।

तदपि कबहूँ कबहुँक सखी ऐसेहि अरत जब, परत दृष्टि दुष्ट तीके ॥
बेगि बोलि कुलगुरु छुओ माथे हाथ अमी के ।
सुनत आइ रिषि कुस हरे नरसिंह मंत्र पढ़े जो, सुमिरत भय भी के ॥
जासु नाम सर्बस सदासिव पारबती के ।
ताहि झरावति कौसिला, यह रीति प्रीति की हिय हुलसति तुलसी के ॥
माथे हाथ रिषि जब दियो राम किलकन लागे ।
महिमा समुझि, लीलाबिलोकि, गुरु सजल नयन, तनु पुलक, रोम-रोम जागै ॥
लिए गोद , धाए गोद तें मोद मुनि मन अनुरागे ।
निरखि मातु हरषी हिए आली ओट कहति मृदु वचन प्रेम के-से पागे ॥
तुम्ह सुरतरु रघुबंस के, देत अभिमत माँगे ।
मेरे बिसेषि गति रावरी तुलसी प्रसाद जाके सकल अमंगल भागे ॥
अमिय -बिलोकनि करि कृपा मुनिबर जब जोए ।
तब तें राम अरु भरत लषन रिपुदवन , सुमुखि सखि ! सकल, सुवन सुख सोए ॥
सुमित्रा लाय हिए फनि मनि ज्यों गोए ।
तुलसी नेछावरि करति मातु अतिप्रेम, मगन मन, सजल सुलोचन कोए ॥
मातु सकल, कुलगुरु-बधू, प्रिय सखी सुहाई ।
सादर सब मंगल किए महि-मनि-महेस पर सबनि सुधेनु दुहाई ॥
बोलि भूप भूसुर लिए अति विनय बहाई ।
पूजि पायँ सनमानि दान दिए लहि असीस सुनि, बरषैं सुमन सुरसाईं ॥
घर -घर पुर बाजन लगीं आनन्द बधाई ।
सुख सनेह तेहि समय को तुलसी जानै जाको चोर्‌यो, है चित चहुँ भाई ॥१२॥

राग धनाश्री

या सिसु के गुन- नाम- बड़ाई ।
को कहि सकै सुनहु नरपति श्रीपति समान प्रभुताई ॥
जद्यपि बुधि, बय, रूप, सील, गुन समय चारु चार्‌यौ भाई ।
तदपि लोल-लोचन -चकोर-ससि राम भगत-सुखदाई ॥

सुर,नर, मुनि करि अभय, दनुज हति, हरिहि धरनि गरुआई ।
कीरति विमल विस्व -अघमोचनि रहिहि सकल जग छाई ॥
याके चरन -सरोज कपट तजि जे भजिहैं मन लाई ।
ते कुल जुगल सहित तरिहैं भव, यह न कछू अधिकाई ॥
सुनि गुरुबचन पुलक तन दंपति , हरष न हृदय समाई ।
तुलसिदास अवलोकि मातु-मुख प्रभु मन में मुसुकाई ॥१३॥

राग विलावल

अवध आजु आगमी एकु आयो ।
करतल निरखि कहत सब गुनगन , बहुत न परिचौ पायो ॥
बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो ।
संग सुसिष्य, सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो ॥
पांय पखारि पूजि दियो आसन, असन बसन पहिरायो ।
मेले चरन चारु चार्‌यो सुत माथे हाथ दिवायो ॥
नखसिख बाल बिलोकि बिप्रतनु पुलक, नयन जल छायो ।
लै लै गोद कमल -कर निरखत, उर प्रमोद न अमायौ ॥
जनम प्रसंग कह्यौ, कौसिक मिसि सीय स्वयंबर गायो ।
राम, भरत, रिपुदवन, लखन को जय सुख सुजस सुनायो ॥
तुलसिदास रनिवास रहसबस, भयो सबको मन भायो ।
सनमान्यौ महिदेव असीसत सानन्द सदन सिधायो ॥१४॥

राग केदारा

पौढ़िए लालन, पालने हौं झूलावौं ।
कर, पद, मुख, चख कमल लसत लखि लोचन -भँवर भुलावौं ॥
बाल-बिनोद-मोद मंजुलमनि किलकनि खानि खुलावौं ।
तेइ अनुराग ताग गुहिबे कहँ मति मृगनयनि बुलावौं ॥
तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं ।
चारु चरित रघुवर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चितु लावौं ॥१५॥

सोइए लाल लाडिले रघुराई

मगन मोद लिए गोद सुमित्रा बार बार बलि जाई ॥

हँसे हँसत, अनरसे अनरसत, प्रतिबिंबनि ज्यों झांई ।

तुम सबके जीवन के जीवन, सकल सुमंगलदाई ॥

मूल मूल, सुरबीथि -बेलि, तम - तोम-सुदल अधिकाई ।

नखत-सुमन, नभ-बिपट बौडि मानो छपा छिटकि छबि छाई ॥

हौ जँभात अलसात तात ! तेरी बानि जानि मैं पाई ।

गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई ॥

बछरु छबीलो छगन-मगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाई ।

सानुज हिय हुलसति तुलसी के प्रभु की ललित लरिकाई ॥१६॥

ललन लोने लेरुआ बलि मैया ।

सुख सोइए नींद बेरिया भई चारु-चरित चार्‌यौ भैया ॥

कहति मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया ।

मोद-कंद कुल-कुमुद-चंद्र मेरे रामचन्द्र रघुरैया ॥

रघुवर बालकेलि संतन की सुभग सुभद सुरगैया ।

तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सप्रेम घनी घैया ॥१७॥

सुख नींद कहति आलि आइहौं ।

राम, लखन, रिपुदवन, भरत सिसु करि सब सुमुख सोआइहौं ॥

रोबनि, धोवनि, अनखानि, अनरसनि, डिठि-मुठि निठुर नसाइहौं ।

हँसानि, खेलनि, किलकनि, आनन्दनि भूपति-भवन बसाइहौं ॥

गोद बिनोद मोदमय मूरति हरषि हरषि हलराइहौं ।

तनु तिल तिल करि, बारि राम पर लैहौं राग बलाइ हौं ॥

रानी राउ सहित सुत परिजन निरखि नयन-फल पाइहौं ।

चारु चरित रघुवंश-तिलक के तहँ तुलसी मिलि गाइहौं ॥१८॥

राग आसावरी

कनक-रतन-मय पालनी रच्यो मनहुँ मार-सुतहार ।
विविध खेलौना किंकिनी लागे मंजुल मुकुताहार ॥
रघुकुल-मंडन राम लला ॥१॥
जननि उबटि अन्हवाइकै मनिभूषन सजि लिए गोद ।
पौढ़ाए पटु पालने, सिसु निरखि मगन मन मोद ॥
दसरथनंदन राम लला ॥२॥
मदन मोर के चंद की झलकनि निदरति तनु-जोति ।
नील कमल, मनि जलद की उपमा कहे लघु मति होति ॥
मातु-सुकृत-फल राम लला ॥३॥
लघु, लघु लोहित ललित हैं पद, पानि अधर एक रंग ।
को कवि जो छवि कहि सकै नखसिख सुन्दर सब अंग ॥
परिजन - रंजन राम लला ॥४॥
पग नूपुर कटि किंकनी, कर किंकनी पहुँची मंजु ।
हिय हरिनख अद्भुत वन्यौ मनो मनसिज मनि-गन-गंजु ॥
पुरजन-सिरमनि राम लला ॥५॥
लोचन नील सरोज-से, भ्रूपर मसि-बिन्दु बिराज ।
जनु बिधु-मुख-छबि-अमिय को रच्छक राखे रसराज ॥
सोभासागर राम लला ॥६॥
गभुआरी अलकावली लसै, लटकन ललित ललाट ।
जनु उडूगन विधु मिलन को चले तम बिदारि करि बाट ॥
सहज सोहावनो राम लला ॥७॥
देखि खेलौना किलकहीं, पद पानि विलोचन लोल ।
विचित्र विहँग अलि जलज ज्यौं सुखमा-सर करत कलोल ॥
भगत-कल्पतरु राम लला ॥८॥
बाल-बोल बिनु अरथ के सुनि देत पदारथ चारि ।
जनु इन्ह बचनन्हि तें भए सुरतरु तापस त्रिपुरारि ॥

नाम-कामधुक राम लला ॥९॥

सखी सुमित्रा बारही मनि भूषन बसन बिभाग ।

मधुर झलाइ मल्हावहीं गावैं उमंगि उमंगि अनुराग ॥

हैं जग-मंगल राम लला ॥१०॥

मोती जायो सीप में अरु अदिति जन्यो जग-भानु ।

रघुपति जायो कौसिला गुन-मंगल-रूप-निधानु ॥

भुवन-विभूषन राम लला ॥११॥

राम प्रगट जब तैं भए गए सकल अमंगल मूल ।

मीत मुदित, हित उदित हैं, नित बैरिन के चित सूल ॥

भव-भय-भंजन राम लला ॥१२॥

अनुज सखा सिसु संग लै खेलन जैहैं चौगान ।

लंका खरभर परैगो, सुरपुर बाजिहैं निसान ॥

रिपुगन-गंजन राम लला ॥१३॥

राम अहेरे चलहिंगे जब गज रथ बाजि संवारि ।

दसकंधर उर धकधकी अब जनि धावै धनु धारि ॥

अरि-करि-केहरि राम लला ॥१४॥

गीत सुमित्रा सखिन्ह कै सुनि सुनि सुर मुनि अनुकूल ।

दै असीस जय जय कहैं हरषैं बरषैं फूल ॥

सुर-सुखदायक राम लला ॥१५॥

बालचरित-मय चंद्रमा यह सोरह-कला-निधान ।

चित चकोर तुलसी कियो कर प्रेम-अमिय-रस पान ॥

तुलसी को जीवन राम लला ॥१६॥१९॥

राग कान्हरा

पालने रघुपतिहिं झलावै ।

लै लै नाम सप्रेम स्वर कौसल्या कल कीरति गावै ॥

केकिकंठ दुति, स्याम बरन वपु, बाल-विभूषन बिरचि बनाए ।

अलकै कुटिल, ललित लटकन भ्रू, नील नलिन दोउ नयन सुहाए ॥

सिसु सुभाय सोहत जब कर गहि बदन निकट पद पल्लव लाए ।

मनहुँ सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सों सचु पाए ॥

उपर अनूप बिलोकि खेलौना किलकत पुनि पुनि पानि पसारत ।

मनहुँ उभय अंभोज अरुन सों बिधु-भय बिनय करत अति आरत ॥

तुलसिदास बहु-बास बिबस अलि सुजत सुछवि न जाति बखानी ।

मनहुँ सकल स्रुति रिचा मधुप ह्वै बिसद सुजस बनरत वर बानी ॥२०॥

3.8 शब्दार्थ :

1.11 - सकृत = एक

2.10 - असही दुखही = द्वेषी, वैरी (जिन्हें भलाई असह्य या दु:सह हो) ।

2.11- ढोव = भेंट की वस्तु जब मंगल के अवसर पर भार में भर कर भेजते हैं । गान करि = गीतों में नाम ले ले कर ।

2.13 - भाउज = तासा । तार, मंजीरा ।

2.15 - उघटहिं = बार -बार एक ही पद को कहते हैं ।

2.21 - सहन भँडार = बाहरी खजाना । कबार = लेन देन ।

3-4 - बए = कहे ।

4-4 - मिलेहि माँझ = साथ ही ।

4-13 - खलेल = तेल की मैल या गाद । थिरथानी = लोकपाल आदि स्थिर स्थान वाले ।

5-6 - कमाहिं = सेवा या काम करती है ।

6-5 - बरे = बरण किया ।

6-10 - आखे - कहे ।

6-11- नर देव = राजा

6-12 - धनधारी = कुबेर

10- उपवियो है = उदय हुआ है । दीप = दीप्त, चमकता हुआ ।

11- मेढ़ी = आगे के बाल को दोनों ओर गूंथ कर बीच की चोटी के साथ बांध देते हैं, जिसे मेढ़ी कहते हैं ।

12 - भी = डर

14 - आगमी = दैवज्ञ, ज्योतिषी ।

17 - लेरुआ = बछवा । घैया = थनसे निकलती हुई दूध की धार

18 - डिठी मुठि = डीठ मूठ, नजर और टोना ।

19-1- सुतहार = खाटबीनने वाला बढ़ई ।

19-6 - मसिबिन्दु = डिठौना ।

19-7 - गभुआरी = गर्भ अर्थात् पेट की ।

19-9 - कामधुक = कामधेनु ।

3.9 अभ्यास प्रश्न :

❋ (दीर्घ उत्तर मूलक)

1. गीतावली की काव्यात्मक विशेषताएँ बताइए ।
2. भक्तिरस का पूर्ण परिपाक 'गीतावली' में जैसा हुआ है वैसा अन्यत्र नहीं - प्रमाणित कीजिए ।
3. 'गीतावली' के पठितांश के आधार पर तुलसी की भक्ति -भावना पर प्रकाश डालिए ।
4. 'गीतावली' के कथानक का विश्लेषण कीजिए ।
5. 'गीतावली' के कला -पक्ष पर प्रकाश डालिए ।

❋ आलोचनात्मक संक्षिप्त प्रश्न :

1. 'गीतावली' के आधार पर तुलसी के दार्शनिक -विचार स्पष्ट कीजिए ।
2. ''तुलसी की भाषा सहज-सरल और बोधगम्य है'' - इस उक्ति की सार्थकता पर विचार कीजिए ।
3. 'गीतावली' के भाव-पक्ष को स्पष्ट कीजिए ।
4. 'गीतावली' एक उत्कृष्ट रचना है - प्रमाणित कीजिए ।

❋ लघूत्तरी प्रश्न :

निम्नलिखित की सप्रसंग व्याख्या कीजिए :

1. या शिशु के गुन नाम बड़ाई …… मुसुकाई ।

2. सुख नींद कहति आलि आइहौं ……. गाइहौं ।

3. पालन रघुपतिहिं झुलावै ……. वर वानी ।

3.10 संदर्भ ग्रंथ :

1 गीतावली - गीताप्रेस, गोरखपुर

2. गोस्वामी तुलसीदास : व्यक्तित्व, जीवन और साहित्य - डॉ. रामदत्त भारद्वाज

3. तुलसी दर्शन - बलदेव प्रमाद मिश्र

4. तुलसी ग्रंथावली - रामचन्द्र शुक्ल

5. तुलसी और उनका काव्य - डॉ. रामदत्त भारद्वाज ।

***

Unit -III

(ख) कवितावली

3. **(ख)कवितावली :**

3.1 ग्रंथ परिचय

3.2 रचनाकाल

3.3 काव्य रूप

3.4 वर्ण्य विषय

3.5 भाव पक्ष

3.6 कला पक्ष

3.7 मूल पाठ

3.8 शब्दार्थ

3.9 अभ्यास प्रश्न

3.10 संदर्भ ग्रंथ

(ख) कवितावली

3.1 ग्रंथ परिचय

कवितावली तुलसी की ऐसी कृति है जिसमें उनका व्यक्तित्व राम महिमा के साथ देशकाल के तादात्म्य करता हुआ एक संघर्षशील सर्जनात्मक लोकमंगलाकांक्षी भक्त के रूप में प्रकटित होता है । इसकृति में विषयवस्तु इस प्रकार है -

इसमें बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्मिन्धाकांड, सुन्दरकांड, लंकाकांड और उत्तरकांड हैं । बालकाण्ड में बालरूप की झांकी, बाललीला, धनुष-यज्ञ, परशुराम -लक्ष्मण संवाद हैं । अयोध्याकांड में वन-गमन, केवट का पद प्रक्षालन, वन में राम यात्रा का वर्णन, अरण्य -निवास है । अरण्यकाण्ड और किष्किन्धा काण्ड में केवल एक-एक पद 'मरीचानुधावन', हनुमानजी का समुद्र लंघन है । सुन्दर काण्ड में अशोकवन, लंका-दहन, अशोक वाटिका से हनुमान की विदाई है । लंका काण्ड में राक्षसों की चिंता, त्रिजटा का आश्वासन, समुद्र पार करना, अंगद का दूत-कर्म, मन्दोदरी-रावण संवाद, राक्षस-वानर संग्राम, लक्ष्मण -मूर्च्छा, राम-रावण युद्ध का अन्त वर्णित है । उत्तर काण्ड में विनय, उद्‌बोधन, राम-महिमा, नाम-महिमा, नाम विश्वास, कलि वर्णन, राम कीर्त्ति -गान चित्रकूट वर्णन, प्रयाग -सुषमा वर्णन, गंगा माहात्म्य, अन्नपूर्णा- विश्वनाथ माहात्म्य आदि वर्णित है । काशी में कवितावली में कुल 425 पद हैं । यह एक मुक्तक काव्य है । इसके प्रत्येक पद अपने में पूर्ण हैं । कवितावली के उत्तर काण्ड में तुलसी के जीवन से संबद्ध अनेक पद हैं । तुलसी के जीवन में विभिन्न समयों पर रचे गए पद इसमें हैं । इसमें पदों को कवित्त संज्ञा दी गई है । कवित्त के अन्तर्गत सवैया धनाक्षरी, छप्पयआ छंद आते हैं । उन्होंने झूलना छंद को भी इसके भीतर समाहित किया है ।

कवितावली में कवित्त, धनाक्षरी, सवैये तथा छप्पय छंद हैं इसकी भाषा शुद्ध ब्रज है । इसमें रामचरित कांडक्रम से वर्णित है । इसपर यह कहा जा सकता है कि ये एक साथ इस क्रम से नहीं बने हैं । प्रत्युत वाद को इस क्रम से संगृहीत किए गए हैं । इनमें दरवारी तथा भाटों की शैली के कवित्त भी हैं और श्रृंगारिका भी । स्वजीवन संबंधी हनुमान बाहुक भी परिशिष्ट रूप में रचकर इसमें जोड़ा गया है । यह क्रमबद्ध रूप में रचित प्रबंध ग्रंथ नहीं है । साहित्यिक शैली के विपरीत सुन्दर कांड की ओजपूर्ण एवं प्रसादगुण पूर्ण शैली महत्वपूर्ण है । इसके उत्तरकांड के अधिकांश पद विनय पत्रिका के पदों से मेल खाते हैं - इसमें राम के बालरूप की झाँकी, धनुषभंग प्रसंग, वनवास प्रसंग, मार्ग में जाते हुए रूप को देखकर मार्गवासी जनों के भाव, लंकादहन, हनुमान लक्षण आदि के युद्ध के बड़े मनोरम प्रसंग वर्णित है । उत्तरकांड के कलियुग की दशा का वर्णन बड़ा मार्मिक है ।

3.2 रचनाकाल :

कवितावली के रचनाकाल के बारे में पं. रामनरेश त्रिपाठी सं. 1615 को आरंभ काल और सं.1680 इसकी समाप्ति मानते हैं । डॉ. माताप्रसाद गुप्त इसका रचना काल सं. 1616-80 मानते हैं । डॉ. उदयभानु सिंह ने इसका रचनाकाल सं. 1631 और 1680 के मध्य निर्णय किया है । इस प्रकार इसके रचनकाल के बारे में विद्वानों में मतभेद है ।

वस्तुत: यह एक संग्रह ग्रंथ है । समय समय पर लिखे गए पदों को इसमें संकलित किया गया है । भाव गंभीरता में मण्डित ये सारे पद हैं और साथ कवित्व शक्ति के परिचायक भी । उन्होंने कई छन्दों में अपनी वृद्धावस्था का वर्णन किया है । इसमें कवि के प्रारंभिक जीवन से लेकर मृत्यु पर्यन्त रचित छन्द पाए जाते हैं ।

जीवन के अन्तिम समय तुलसी रोगग्रस्त थे और महामारी की चपेट में भी आ गए थे ।

आधिभूत - बेदन विषम होत भूतनाथ ।
तुलसी बिकल, पाहि पचत कुपीर हैं ।
मारिये तौ अनायास कासीवास खास फल,
ज्याइए तौ कृपा करि निरुज शरीर हौं ॥ (7-166)

* * *

तुलसी सभीत -पाल सुमिरे कृपालु राम ;
समय सकरुना सराहि सनकर दी । (7-183)

इसमें यह स्पष्ट होता है कि उनके जीवन काल में ही महामारी का प्रकोप शान्त हो गया था । अंतिम अवस्था में शायद रोग मुक्त हो गये हों ; यह अवस्था राम की कृपा का प्रभाव ज्योति बन कर दीप निर्वाण की ज्योति जैसी हो सकती है ; ऐसा अनुमान लगाया जाता है ।

3.3 काव्य रूप :

इस ग्रंथ में भाव या विषय से संबंधित अनेक छंद हैं । मानस की भाँति इस ग्रंस को काण्डों में विभाजित किया गया है । इसमें धारावाहिकता नहीं है । राम कथा के बिखरे खण्ड चित्रों को पूर्वापर क्रम से संयोजित कर दिया गया है । राम के जीवन से संबंधित अपनी घटनाओं को छोड़ दिया गया है । इससे प्रबंध -रस की अनुभूति नहीं हो पाती है ।

इस ग्रंथ में किसी भी पात्र के चरित्र का सर्वांग निरूपण नहीं हो पाया है । इस काव्य के नायक राम का चरित्र भी व्यवस्थित रूप से चित्रित नहीं है । लेकिन उनके भक्त हनुमान के चरित्र का प्रभावशाली

वर्णन सुन्दर काण्ड तथा लंकाकाण्ड में दिखाई देता है । इस कृति में किसी एक विशिष्ट रस की व्यंजना ध्वनित नहीं होती, जिससे अन्य रस अंग के रूप में ध्वनित हो । इस दृष्टि से देखा जाय तो यह ग्रंथ मुक्तक 'काव्य' की कोटि में आ सकता है । वस्तुत: इस ग्रंथ को आद्य-प्रान्त देखने से पता चलता है कि यह कवि के विभिन्न समय पर लिखे गए स्वतंत्र छंदों का संग्रह है । डॉ. उदयभानु सिंह के अनुसार यह एक मुक्तक काव्य है , जिसमें मुक्तक के सभी भेद पाये जाते हैं ।

(तुलसी काव्य मीमांसा -पृ. -476)

3.4 वर्ण्य विषय :

यह काव्य रामकथा के खण्ड-चित्रों की एक चित्रशाला जैसी है । इसमें कवि ने उस समय के समाज और जीवन -चित्र को प्रस्तुत किया है । इसमें भाव पक्ष की सबलता देखी जा सकती है । बालकाण्ड में शिशु राम के बालरूप से लेकर सरयूतट पर आखेट क्रीड़ा तक का मार्मिक वर्णन है । धनुष यज्ञ का आंशिक वर्णन करके बरबधू रामसीता की झांकी प्रस्तुत की गयी है । तदनन्तर परशुराम के कोप, विश्वामित्र द्वारा दिए गए परिचय के साथ बालकाण्ड की समाप्ति है ।

अयोध्याकाण्ड का प्रारंभ राम के वन-गमन से होता है । दो छंदों में कौशल्या की वेदना और सुमित्रा द्वारा दी गई सांत्वना के बाद केवट प्रसंग का बड़ा भावपूर्ण वर्णन अंकित किया गया है । सीता के श्रम और राम के प्रेम का वर्णन बड़ा मार्मिक है ।

अरण्यकाण्ड में केवल एक ही छंद है । जिसमें मारिच बध का संकेत मात्र है ।

सुन्दर काण्ड का आरंभ अशोकवाटिका के वर्णन के साथ हुआ है । दो छंदो के बाद लंकाकाण्ड का वर्णन आरंभ कर दिया गया है । इसमें लंका की दुर्गति का चित्रण है ।

लंकाकाण्ड के आरंभ में त्रिजटा -सीता संवाद हैं । मन्दोदरी का रावण को परामर्श देना वर्णित है । युद्ध का वर्णन किया गया है । हनुमान का शोर्य, रणकौशल वर्णित है । लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर शोक का वर्णन है । अंतिम छंद में राम के सिंहासनारुढ़ होने का वर्णन है और इसके साथ ही ग्रंथ में यहीं पर रामकथा का वर्णन समाप्त हो जाता है । क्योंकि 'उत्तरकाण्ड' रामकथा से संपृक्त नहीं है । राम की भक्तवत्सलता, दयालुता, उदारता, पतितपावनता एवं शरणागतवत्सलता इत्यादि का विस्तार पूर्वक वर्णन है । कवि ने अपनी दीनता का वर्णन करते हुए अपने प्रारंभिक जीवन के कष्टों का वर्णन किया है । तुलसी ने राम के प्रति अपनी अनन्य भक्ति प्रतिपादित करते हुए अपने जीवन को राममय चित्रित किया है ।

उन्होंने कलि के प्रभाव के बहाने वर्णाश्रम धर्म के ह्रास, राजा और अधिकारियों के अत्याचार समाज के पतन, दुर्भिक्षजनित जनता के कष्ट, महामारी के प्रकोप दारिद्र्य दानव की ताण्डव नृत्य का वर्णन किया है । संसार की नश्वरता तथा क्षणिकता, भौतिक समृद्धि की असारता प्रमाणित करते हुए

उन्होंने भक्ति की प्रेरणा दी है । गंगा जी के महत्व, प्रभाव का वर्णन किया है । देवी अर्णपूर्णा और पार्वती का वर्णन किया है । इस प्रकार देखा जाता है कि उत्तर काण्ड वैविध्यपूर्ण वर्णन से भरपूर है ।

3.5 भाव पक्ष :

रसपरिपाक की दृष्टि से 'कवितावली' उत्कृष्ट कोटि का काव्य है । इससे तुलसी एक रससिद्ध कवि के रूप में प्रमाणित होते हैं । इस कृति में सभी रसों की अभिव्यंजना हुई है ।

वात्सल्य रस का वर्णन करते हुए कवि शिशु राम के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं ।

कवहूँ शशिमांगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं ।
कवहूँ करताल बजाइकैं नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं ॥
कवहूँ रिसिआइ कहैं हठि कैं पुनि लेत सोइ जेहि लागिं अरैं ।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में बिहरैं ॥ (पद - 1-4)

इस पद में माताएँ आश्रय, रामादि चार बालक आलंबन, उनका चन्द्रमा के लिए अड़ना, करताल बाजाकर नाचना तथा क्रुद्ध होकर हठ करना आदि चेष्टाएँ उद्दीपन हैं । माताओं का हर्ष आवेग संचारी भाव है । इस प्रकार वात्सल्यरस का पूर्ण परिपाक हुआ है ।

दास्यभावना के भक्त होने के कारण तुलसी ने शृंगार का तो अधिक वर्णन नहीं किया है लेकिन राम-सीता के उदात्त प्रेम की झाँकी देकर इसका परिपाक किया है ।

दूलहु श्रीरघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर मांहिं ।
* * *
राम को रूप निहारति जानकी, कंकन के नग की परछाहीं । (पद -1-17)
* * *

इस पद में सीता के प्रति राम के प्रेम की व्यंजना, सीता का पवित्र आंतरिक अनुराग उनकी उन सलज्ज चेष्टाओं में व्यक्त हुआ है जो मर्यादित है ।

जैसे ही शृंगार का चित्रण वैसे ही वियोग की अभिव्यक्ति काव्य की शोभा बर्धक है । कवि ने हास्य रस का भी बड़ा मार्मिक वर्णन किया है । (पद -2-20)

करुण रस का भी परिपाक वनगमशन के बाद कौशल्या सुमित्रा संवाद में देखा जा सकता है । पुत्र के वन गमन से कौशल्या को मार्मिक वेदना अवश्य हुई है, जिसका मार्मिक वर्णन उन्होंने किया है । कवितावली में दास्य भक्ति है और विनय की सातों भूमिकाएँ (दीनता, मानमर्षण, भयदर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारण) और प्रपत्ति के छह अंगों(अनुकूलता का संकल्प, प्रतिकूलता का वर्जन, रक्षकत्व में विश्वास, रक्षक रूप में वरण, आत्मनिक्षेप और कार्पण्य) का भी निरूपण हुआ है ।

कवितावली में परशुराम प्रसंग में रौद्र रस की सफल व्यंजना दर्शनीय है -

गर्भ के अर्भक काटन को पटु-धार कुठार कराल है जाको ।
सोई हौं बूझत राज-सभा धनु को दल्यो हौं दलि हौं बलताको ।
लघु आनन उत्तर देत बड़ौ, लरि है, मरि है, करि है कछु साकौ ।
गौरो गरुर गुमान भरौ कौसिक छोटो सौ ढोटौ है काकौ ॥(पद -1-20)

यहाँ परशुराम आश्रय, लक्ष्मण आलंबन, टूटा हुआ धनुष तथा लक्ष्मण का उत्तर उद्दीपन, परशुराम के प्रश्न तथा अपने पुरुषार्थ का वर्णन अनुभाव एवं मद, अमर्ष, स्मृति, उग्रता, तथा गर्व आदि संचारीभाव हैं जिनमें क्रोध पुष्ट होकर रौद्ररस व्यंजित हुआ है ।

इसी प्रकार भयानक, वीभत्स, अद्भुत आदि रसों का परिपाक इस ग्रंथ में सर्वत्र दर्शनीय है । न केवल कवि ने रसों की अपितु अनेक मनोरम भावों की अत्यंत मर्मस्पर्शी व्यंजना की है । ध्वनि की दृष्टि से भी 'कवितावली' उत्कृष्ठ कोटि का काव्य है । इसमें केवट का प्रसंग बड़ा ही मार्मिक है । राम के चरण धोकर उनके प्रति वह अपनी भक्ति प्रकट करना चाहता है ।

परसे पगधूरी तरै तरनी घरनी घर क्यों समुझाइ हौं जू ।
तुलसी अबलंब न और कछु लरिका केहि भाँति जिआइ हौंजू ॥(पद 2-6)

नाव के तरुणी हो जाने से घर में विपत्ति खड़ी हो जायगी दूसरे आजीविका का यह एक मात्र साधन समाप्त होने से जीवन यापन का संकट खड़ा हो जायगा । इसलिए बिना पैर धोए नाव पर चढ़ने नहीं दूंगा । इस प्रकार अनेक मनोरम प्रसंगों से यह काव्य अत्यंत उत्कृष्ट बन पड़ा है ।

3.6 कला पक्ष :

इसकी भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है । इस पर अवधी का भी प्रभाव है । अवध प्रदेश में रहने के कारण अवधी भाषा का प्रभाव होना स्वाभाविक है । तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है । जैसे अर्बुद, सीधमान, खेचर तथा मयन, कपन, सापर, प्रान, उपास आदि अरबी, फारसी के शब्दों का प्रयोग भी तुलसी ने किया है । जैसे फहम, सोर, सुमार, निहाल, दगाबाज, साहब, रहम, बाज, हाल इत्यादि । इसमें मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग अधिकतर हुआ है - जैसे लघुआनन उत्तर देतो बड़ो, आँखि दिखाए, चले लै चित्र चोर, नहिं खात कोउ भात राध्यौं, मराल होत खूजरो आदि ।

कवि ने प्राय: सब जगह अभिधा शक्ति को अपनाया है । काव्य गुणों में प्रसाद, ओज, और माधुर्य सभी गुणों का समावेश है । इस प्रकार कवि ने भावों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है । अलंकार प्रयोग की दृष्टि से देखा जाय तो यह उत्कृष्ट कोटि का काव्य ठहरता है । शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों के प्रयोग में कवि सिद्धहस्त निकलते हैं । अनुप्रास, रुपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीप,

सन्देह, अतिशयोक्ति, विभावना, परिकर, दृष्टान्त आदि अलंकारों के प्रयोग से इस ग्रंथ की चारुता बढ़ गई है । तुलसी ने उस समय प्रचलित प्राय: समस्त काव्य शैलियों को अपनाया है, सवैया, झूलना, छप्पय आदि छन्दों में उनकी कविता पाठकों का मनोहरण कर लेती है । यह रचना काव्य की दृष्टि से सरस और सुन्दर है इसमें सन्देह नहीं ।

3.7 कवितावली

(बाल कांड एवं अयोध्या कांड)

(मूल पाठ)

बालकांड

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे ।
अवलोकि हौं सोच विमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिक से ॥
तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सु खंजन-जातक से ।
सजनी ससि में समसील उभै नव नील सरोरुह से विकसे ॥१॥

पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिए ।
नव नील कलेवर पीत झँगा झलकै, पुलकें नृप गोद लिए ॥
अरबिंद सो आनन, रूपमरंद अनंदित लोचन -भृंग पिए ।
मन मों न बस्यौ अस बालक जौ 'तुलसी' जग में फल कौन जिए ? ॥२॥

तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं ।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अंगन की दूरि धरै ॥
दमके दंतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकै कल बाल-विनोद करैं ।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी -मन-मंदिर में विहारैं ॥३॥
कबहूँ ससि सांगत आरि करै, कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं ।
कबहूँ करताल बजाई कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरै ॥

कबहूँ रिसिआइ कहै हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं ।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिर में बिहरैं ॥४॥

वर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर -पल्लव खोलन की ।
चपला चमकै घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की ॥
घुँघुरारी-लटै लटकै मुख ऊपर, कुंडल लोल कपोलन की ।
निवछाबरि प्रान करै तुलसी, बलि जाऊँ लला इन बोलन की ॥५॥

पदकंजनि मंजु बनी पनहीं, धनुही सर पंकजपानि लिए ।
लरिका संग खेलत डोलत हैं सरजू तट चौहट हाट हिए ॥
तुलसी अस बालक सो नहिं नेह कहा जप जोग समाधि किए ।
नर ते खर सूकर स्वान समान, कहौ जग में फल कौन जिए ॥६॥

सरजू वर तीरहि तीर फिरैं रघुबीर, सखा अरु वीर सबै ।
धनुही कर तीर, निषंग कसे कटि, पीत दुकूल नवीन फबै ॥
तुलसी तेहि औसर लावनिता दस, चारि नौ तीनि इकीस सबै ।
मति-भारति पंगु भई जो निहारि, विचारि फिरौ उपमा न फबै ॥७॥

कवित्त

छोनी में के छोनीपति छाजै जिन्हें छत्रछाया
छोनी छोनी छाए छिति आए निमिराज के ।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बर बेष बपु
बरबै को बोले बयदेही बरकाज के ॥
बोले बंदी बिरुद बजाई बर बाजनेऊ,
बाजे बाजे बीर बाहु धनुत समाज के ।
तुलसी मुदित मन पुर नर-नारि जेते
बार बार हेरे मुख, औध-मृगराज के ॥८॥

सीय के स्वयंबर समाज जहाँ राजनि को,
राजनि के राजा महाराजा जानै नामको ?
पवन पुरंदर, कृसानु, भानु, अनन्द से ;
गुन के निधान रूपधाम, सोम काम को ?।
बान बलवान, जातुधानप सरीखे सूर ।
जिन्हके गुमान सदा जालिम संग्राम को ।
चपरि चढ़ायो चाप चंद्रमा-ललाम को ॥९॥

मयनमहन पुरदहन गहन जानि,
आनि कै सबै को सारु धनुष गढ़ायो है ।
जनक सदसि जेते भले भले भूमिपाल
किए बलहीन, बल आपनो बढ़ायो है ॥
कुलिस कठोर कूर्म पीठ तें कठिन अति,
हठि न पिनाक काहू चपरि चढ़ायो है ।
तुलसी सो राम के सरोज-पानि पसंत ही,
टूट्यो मानों बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है ।१०॥

छप्पय

डिगति उबिं अति गुबिं, सबै पब्बै समुद्र सर ।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर ॥
दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्खभर ।
सुरबिमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर ॥
चौके बिरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धूनि जबहिं राम सिवधनु दल्यौ ॥११॥

धनाक्षरी

लोचनाभिराम घनस्याम रामरूप सिसु,
सखी कैहैं सखी सों तू प्रेममय पालि, री !
बालक नृपालजू के ख्याल ही पिनाक तोर्‌यो,
मंडलीक-मंडली-प्रताप-दाप दालि री ॥
जनक को, सिया को, हमारो, तेरो, तुलसी को,
सब को भावतो ह्वैहै मैं जो कह्यो कालि री ।
कोसिला की कोखि पर तोखि तन वारिये री,
राय दसरत्थ की बलैया लिजै आलि री ।।१२॥

दूब दधि रोचना कनकथार भरि भरि,
आरती सँवारि वर नारि चलीं गावतीं ।
लीन्हें जयमाल करकंज सोहै जानकी के,
'पहिलाओ राघोजू को' सखियाँ सिखावतीं ॥
तुलसी मुदितमन जनक नगरजन,
झाँकती झरोखे लागीं सोभा रानी पावतीं ।
मनहुँ चकोर चारु बैठीं निज निज नीड़,
चंद की किरन पीवैं , पलकैं न लावतीं ॥१३॥

नगर निसान बर बाजैं ब्योम दुंदुभी,
बिमान चढ़ि गान कै कै सुरनारि नाचहिं ।
जय जय तिहुँ पुर, जयमाल राम उर,
जनक को पन जयौ, सब को भावती भयौ,
तुलसी मुदित रोम रोम मोद माचहीं ।
साँवरो किसोर, गोरी सोभा पर तन तोरि
'जोरी जियौ जुग जुग' सखीजन जाँचही ॥१४॥

भले भूप कहत भले भदेस भूपनि सों
'लोक लखि बोलिए पुनीत रीतिमारखी' ॥
देखे हैं अनेक ब्याह, सुने हैं पुरान बेद,
बूझे हैं सुजान साधु नर नारि पारखी ।
ऐसे सम समधी समाज न विराजमान,
राम- से न वर, दुलही न सीय सारखी ॥१५॥

बानी बिधि गौरी हर सेसहू गनेस कहीं,
सही भरी लोमस भुसुंडि बहु-बारिखो ।
चारिदस भुवन निहारि नर-नारि सब,
नारद को परदा न नारद सो पारिखो ॥
तिन कहीं जग में जगमगति जोरी एक,
दूजो को कहैया ओ सुनैया चखचारिखो ।
रमा, रमारमन, सुजान हनुमान कहीं
'सीय सी न तीय न पुरुष राम सारिखो' ॥१६॥

सवैया

दूलह श्री रघुनाथ बनो, दुलही सिय सुन्दर मंदिर माहीं ।
गावति गीत सब मिलि सुंदरि, बेद जुबा जुरि बिप्र पढ़ाही ॥
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाही ।
बातें सबै भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं ॥१७॥

कवित्त

भूपमंडली प्रचंड चंडीस-कोदंड खंड्यौ
चंड बाहुदंड जाको ताही सों कहतु हौं ।
कठिन कुठार धार धोरिबे की धीरताहिं,
बीरता बिदित ताकी देखिए चहतु हौं ॥

तुलसी समाज राज तजि सो बिराजै आजु,
गाज्यौ मंगराज गजराज ज्यों गहतु हौं ।
छोनी में न छाँड्यौ छप्यौ छोनिप को छोना छोटो,
छोनिप -छपन बाँको विरुद बहतु हौं ॥१८॥

निपट निदरि बोले बचन कुठारपानि,
मानि त्रास औनिपन मानौ मौनता गही ।
रोषे माषे लखन अकनि अनखौंही बातैं,
तुलसी बिनीत बानी बिहंसिं ऐसी कही ॥
'सुजस तिहारी भरो भुवननि, भृगुनाथ !
प्रगट प्रताप आपु कहौ सो सबै सही ।
टूट्यौ सो न जुरैगो सरासन महेसजू को,
रावरी पिनाक मैं सरीकता कहा रही ?' ॥१९॥

सवैया

''गर्भ के अर्भक काटन को पटु धार कुठार कराल है जाको ।
सोई हौं बूझत राजसभा 'धनु को दल्यौ' ? हौं दलिहौं बल ताको ।
लघु आनन उत्तर देत बड़ो, लरिहं मरिहै कछु साको ।
गोरो गरुर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटो सो ढोटो है काको'' ॥२०॥

घनाक्षरी

''मख राखिबे के काज राजा मेरे संग दए
जीते जातुधान जे जितैया बिबुधेस के ।
गौतम की तीय तारी, मेटे अघ भूरि भारी,
लोचन अतिथि भए जनक जनेस के ॥
चंड बाहुदंड बल चंडीस-कोदंड खंड्यौ,
ब्याही जानकी, जीते नरेस देस देस के ।

साँवरे गोरे सरीर, धीर महाबीर दोऊ,
नाम राम- लखन, कुमार कोसलेस के ॥२१॥

सवैया

काल कराल नृपालन के धनुभंग सुने फरसा लिए आए ।
लक्खन राम बिलोकि सप्रेम, महा रिसि ते फिरि आँखि दिखाए ॥
धीर-सिरोमनि बीर बड़े बिनयौ, बिजयी रघनाथ सुहाए ।
लायक है भृगुनायक सो धनुसायक सौंपि सुभाय सिधाए ॥२२॥

अयोध्या कांड

सवैया

कीर के कागर ज्यौं नृपचीर त्रिभूषन, उप्पम अंगनि पाई ।
औध तजी मगबास के रूख ज्यौं, पंथ के साथी ज्यौं लोग-लुगाई ॥
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया मनो धर्म किया धरि देह सुहाई ।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं ॥१॥
कागर-कीर ज्यौं भूषन चीर सरीर लस्यौ तजि नीर ज्यौं काई ।
मातु पिता प्रिय लोग सबै, सनमानि सुभेद सनेह सगाई ॥
संग सुभामिनि भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई ।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं ॥२॥

घनाक्षरी

सिथिल सनेह कहै कौसिला सुमित्राजू सों,
''मैं न लखी सौति, सखी ! भंगिनी ज्यौं सेई है ।
कहैं मोहि 'मैया' कहौं 'मैं न मैया' भरत की ;
'बलैया लैहौं, भैया ! तेरी मैया कैकेयी है ॥'
तुलसी सरल भाय अघाय माय मानी,
काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है ।

बाम बिधि मेरो सुख सिरिस सुमन सम,
ताको छल-छुरी कोह-कुलिस लै टेई हैं'' ॥३॥
कीजै कहा, जीजी जू !'' सुमित्रा परि पायँ कहै
''तुलसी सहाबै बिधि सोई सहियतु है ।
रावरो सुभाव राम-जन्म ही तें जानियत,
भरत की मातु को कि ऐसो चहियतु है ? ॥
जोई राजघर, ब्याहि आई राजघर माहँ,
राज-पूत पाए हूँ न सुख लहियतु है ।
देह सुधागेह ताहि मृगहू मलीन कियो,
ताहू पर बाहू बिनु राहु गहियतु है''॥४॥

सवैया

नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े ।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन, होत अजाखुर बारिधि बाढ़े ॥
तुलसी जेहि के पदपंकज तें प्रगटी तटिनी जा हरै अघ गाढ़े ।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ मांगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े ॥५॥
एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल थाह देखाइहौं जू ।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू ?
तुलसी अवलंब न ओर कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू ?।
बरु मारिए मोहि बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥६॥
रावरे दोष न पायंन को, पग धूरि को भूि प्रभाउ महा है ।
पाहन तें वन-बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है ।
पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है ?
तुलसी सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ॥७॥

घनाक्षरी

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछू बेद ना पढ़ाइहौं ।
सब परिवार मेरो याही लागि, राजा जू !
हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं ? ॥
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वैकै बात न बढ़ाइहौं ।
तुलसी के ईस राम रावरे सों साँची कहौं,
बिना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं ॥८॥
जिनको पुनीत वारि धारे सिर पै पुरारि,
त्रिपथगामिनी -जसु बेद कहै गाइ कै ।
जिनको जोगीन्द्र मुनिबृंद देब कहै गाइ कै ।
करत बिराग जप जोग मन लाइ कै ॥
तुलसी जिनको धूरि परसि अहिल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो सा लिवाइ कै ।
तेई पायँ पाइकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु
ख्वैहौं न पठावनी कै ह्वैहौं न हँसाइ कै ? ॥९॥
प्रभुरुख पाइकै बोलाइ बाल घरनिहिं
बंदि कै चरन कहूँ दिसि बैठे घेरि -घेरि ।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानि गंगाजू को
धोइ पांय पीयत पुनीत बारि फेरि फेरि ॥
तुलसी सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,
बरषै सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि ।
बिबुध-सनेह-सानी बानी अयानी सुनि,
हँसे राघौ जानकी लखन तन हेरि -हेरि ॥१०॥

सवैया

पुर तें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै ।
झलकी भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै ॥
फिरि बूझति है ' चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै?'' ।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल ज्वै ॥११॥
'जल को गए लक्खन है तारिका, परिखी, पिय ! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े ।
पोछिं पसेउ बयारि करौ, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े ॥
तुलसी रघुबीर प्रिया स्रम जानि के बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े ।
जानकी नाह को नेह-लख्यौ, पुलकी तनु, बारि बिलोजन बाढ़े ॥१२॥
ठाढ़े हैं नौद्रुम डार गहे, धनु कांधे धरे, कर सायक लै ।
बिकटी भ्रकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छबि है ॥
तुलसी असि मूरति आनि हिए जड़ डारिहौं प्रान निछावरि कै ।
स्रम-सीकर सांवरि देह लसै मनो रासि महातम तारकमें ॥१३॥

घनाक्षरी

जलजनयन जलजनयन, जटा है सिर,
जोबन उमंग अंग उदित उदार हैं ।
सांवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी,
मुनिपट धारे, उर फूलनि के हार हैं ॥
करनि सरसन सिलीमुख, निषंग कटि,
अतिही अनूप काहू भूप के कुमार हैं ।
तुलसी विलोकि कै तिलोक के तिलक तीनि,
रहे नरनारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं ॥१४॥
आगे सोहै साँवरो कुवँर, गोरो पाछे पाछे,
आछे मुनि वेष धरे लाजत अनंग हैं ।
बान बिसिखासन, बसन बन ही के कटि,

कसे हैं बनाई, नीके राजत निषंग हैं ॥
साथ निसिनाथमुखी पाथनाथ -नंदिनी सी,
तुलसी विलोके चित्त लाइ लेत संग हैं ।
आनन्द उमंग न, जोवन उमंग तन,
रूप की उमंग उमगत अंग अंग हैं ॥१५॥

कवित्त

सुन्दर बदन, सरसौरुह सुहाए नैन,
मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के ।
अंसनि सरासन लसत सुचि कर सर,
तून कटि, मुनिपट लूटक पटनि के ॥
नारि सुकुमारि संग जाके अंग उबटि कै,
बिधि बिरचे बरूथ विद्युतछटनि के ॥१६॥
बल्कल बसन, धनुबान पानि, तून कटि,
रूप के निधान, घन-दामिनी-वरन हैं ।
तुलसी सुतीय संग सहज सुहाए अंग
नवल कंवल हू ते कोमल चरन हैं ॥
औरै सो बसंत , औरै रति, औरै रतिपति,
मूरति बिलोके तन मन के हरन हैं ।
तापस बेषै बनाइ, पथिक पथै सुहाइ
चले लोक -लोचननि सुफल करन हैं ॥१७॥

सवैया

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच, विलोकहु, री सखी ! मोहिं सी ह्वै ।
मग जोग न, कोमल, क्यों चलिहैं ? सकुचात मही पदपंकज छवै ॥
तुलसी सुनि ग्रामवधू विथकीं, पुलकी तन औ चले लोचन च्वै ।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप है भूप के बालक द्वै ॥१८॥

सांवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैंन लियो हैं ।
बान कमान निषंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनिवेष कियो हैं ॥
संग लिये विधु-बैनी बधू रति को जेहि रंचक रूप दियो हैं ।
पाँयन तौ पनहीं न, पयादेहिं क्यों चलिहैं ? सकुचात हियो है ॥१९॥

रानी मैं जानी अजानी महा, पबि पाहन हूँ ते कठोर हियो है ।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है ॥
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ? ।
आँखिन, सखि ! राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनवास दियो हैं ?॥२०॥

सरस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी सी भौहैं ।
तून सरासन बान धरे, तुलसी वन-मारग में सुठि सोहैं ॥
सादर बारहिं वार सुभाय चितै तुमत्यों हमरो मन कोहैं ।
पूछति ग्रामवधू सिय सों ‘‘कहौ सांवरे से, सखि रावरे को हैं ?’॥२१॥

सुनि सुन्दर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली ।
तिरछे करि नैन दे सैन तिनहैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली ॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन -लाहु असीं ।
अनुराग-तड़ागमें भानु उदै विगसी मनो मंजुल कंज -कली ॥२२॥

धरि धीर कहैं ‘चलु देखिय जाइ जहाँ सजनी रजनी रहिहैं ।
कहि हैं जग पोच, न सोच कछू, फल लोचन आपन तो लहिहैं ॥
सुख पाइहैं कान सुनो बतियाँ , कल आपसु में कछू पै लहिहैं ।
तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं, पुलकीं लखि राम हिये महि हैं ॥२३॥

पद कोमल, स्यामल गौर कलेवर, राजत कोटि मनोज लजाए ।
कर बान सरासन, सीस जटा, सरसीरूह लोचन सोन सुहाए ॥
जिन देखे, सीख ! सतभायहु तें, तुलसी तिन तौ मन फेरि न पाए ।
यहि मारग आजु किसोर बधू विधुबैनी समेत सुभाय सिधाए ॥२४॥

मुखपंकज , कंज विलोचन मंजु मनोज-सरासन सों बनी भौहैं ।
कमनीय कलेवर, कोमल स्यामल गौर किसोर, जटा सिर सोहैं ॥
तुलसी कटि तून, धरे धनु बान, अचानक दीठि परी तिरछीहैं ।
केहि भाँति कहीं, सजनी ! तोहि सों मृदु मूरति द्वै निवसी मन मो हैं ॥२५॥

प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चित्त दै, चले लै चित चोर ।
स्याम सरीर पसेऊ लसै, हुलसै तुलसी छबि सो मन मोरे ॥
लोचन लोल चलै भ्रुकुटी , कल काम कमानहु सो तृन तोरे ।
राजत राम कुरंग के संग, निषंग कसे, धनु सों सर जोरे ॥२६॥

सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि, पानि सरासन सायक लै ।
बन खेलत राम फिरैं मृगया, तुलसी छबि सो वरनह किमि कै ? ॥
अवलोकित अलौकिक रूप मृगी मृग चाकि चकै चितवै चित दै ।
न डगै न भगै जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है ॥२७॥

बिंध्य के बासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे ।
गौतमतीय तरी, तुलसी, सो कथा सुनि भे मुनिबृंद सुखारे ।
ह्वैहै सिला सब चन्द्रमुखी परसै पद-मंजुल-कंज तिहारे ।
कीन्हीं भली रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे ॥२८॥

3.8 **शब्दार्थ :**

1. सकारे = प्रात:काल । कैलै = में लेकर । हौं = मैं । सोच विमोचन = शोक से विमुक्त करने वाले । ठगि सी रही = चकित हो गई । से =वे (उनको) । जातक = बच्चा । सजनी = सखी । समसील = समान गुण धर्म वाले ।

2. नूपुर = घुघंरू । कलेवर = शरीर । झँगा = झिंगुली । बिंद = कमल । मरंद = मकरंद= पराग । भृंग = भौंरे ।

3. दुति = कांति , शोभा । सरोरुह = कंज, कमल । धूरि = धूल । ज्यौं = तरह । कल = सुन्दर (श्रवण को सुखद, जैसे कलगान)

4. आरि करैं = हठ करते हैं । प्रतिबिम्ब = परछाई । मोद = प्रसन्नता ।

5. अधराधर = दोनों ओंठ । पल्लव= नवीन आमकी पत्तियाँ । जगै = जग जाती है । लोल = चंचल । हिलते हुए । लला = रामचन्द्रजी ।

6. पनही = पदत्राण, जूता । धनुही = छोटा धनुष । वनी = शोभा देती है । चौहट = चौमुहानी, प्रेम । हाट =बाजार ।

7. वीर = भाई । सबै = सबय, एक अवस्था के । निषंग = तरकश । दुकूल = रेशमी वस्त्र । फबै = सुन्दर लगता है । अवसर = अवसर । लायविता = लावण्य । भारती = सरस्वती । विचारि फिरी = विचार करके लौट गई । पबै = पावै , पाती है ।

8. छोनी = पृथ्वी । छोनीपति = राजा । छाजै = सुशोभित । छोन - छानी = अक्षौहिणी, झुंड । निमिराज = जनक । बरिबंड = बलवान । बपु = शरीर । बर काज = विवाह । बरबै को बोले = वरण करने को बुलवाये थे । विरुद = यश । बाजे बाजे = कोई -कोई । धुनत = ठोकते हैं । समाज समूह । हेरै = देखते हैं । मृगराज = सिंह ।

9. जानै नाम को = उनका नाम कौन जान सकता है । पुरंदर =इन्द्र । धनद =कुबेर । से = समान । सोम काम = चन्द्रमा और कामदेव । बान= बाणासुर । जातुधानप = रावण । सूर = शूर(योद्धा) । सालिम = दृढ़ , अविचलित । चपरि =फुर्ती से । चन्द्रमा -ललाम = चन्द्रभूषण, शंकर ।

10. मयन = मदन । महन = मथन । पुरदहन = त्रिपुर दहन । आनि कै = एकत्र करके । सारु = सार, तत्त्व । कुलिस = बज्र । बार सें = छुटपन से ।

11. डिगति = डगमगाती है । उर्वि =पृथ्वी । गुर्वि = भारी । पब्बै =पर्वत । ब्याल = शेषनाग । मुक्खभर = मुखभर । संघटित = टकराते हैं । कोल =वाराह । चंड = भयंकर । दल्यो = तोड़ा ।

12. लोचनाभिराम = नेत्रों को सुन्दर लगने वाले । प्रेमपय = प्रेमरूपी दूध । ख्याल ही =

कौतुक मात्र से । मंडलीक = मंडली राजाओं की सभा । दापु =दर्प, अभिमान । भावतो = मनचाहा, इच्छित ।

13. रोचना -गोरोचन = रोली । बर = श्रेष्ठ स्त्रियाँ, सौभाग्यवती । झरोखे = गवाक्ष से, खिड़की में से । नीड़ = घोंसला । चारु =सुन्दर । लावती = गिराती ।

14. निसान = निशान (बाजे) । दुंदुभी = नगाड़ा । रूरे =सुन्दर । राचही = अनुरक्त होते हैं । पन = प्राण । जयो = विजयी हुआ । गोरी = गौरवर्ण जानकी । तृन तोरि =निछावर होना, एक प्रकार का टोटका है जिसमें तृण तोड़कर फेंका जाता है ।

15. भले =अच्छे । भदेस = बड़े दुष्ट । लोक लखि = संसार की रीति विचार कर । रीति मारखी = आर्ष रीति सभ्यों की तरह । मुँह कारखी = मुँह में कारिख लगना, कलंकित होना । परखी = परीक्षक ।

16. बानी = सरस्वती । सही भरी = समर्थन किया । बहुबारिखो = बहुत अवस्थावाले बृद्ध अतएव सम्माननीय । पारिखो = भले बुरे को पहचानने वाले । दूजो = दूसरा । चष चारिखो = चार चक्षु, चार आँखोंवाला ।

17.जुवा जुरी = जुआ खेलते समय ; विवाह में विहाहोपरान्त स्त्रियां वर-बधू को कोहबर में ले जाकर जुआ खेलाती हैं ।

18. चंडीस - कोदण्ड = शिवधनुष । चंड = बलशाली । धारिबै की = सहन योग्य । गाज्यो = गरजकर । मृगराज = सिंह । छप्यौ = चिपा हुआ । छोनिप = राजा । छाना = छोटा बच्चा । छोनिप-उपन = क्षत्रिय संहारक । बहतु हौं = धारण करता हूँ ।

19 . निपट = बिलकुल । कुठार पानि = परशुराम । औनिपगि = राजाओं ने । माखे = बुरा माना । अकनि = सुनकर । अनखौंही = खिझानेवाली, अपमानजनक । सरासन = शरासन । रावरी = आपकी । सरीकता = साझा (फारसी के सरीक से बना) । कहा = क्या ।

20. अर्भक = बच्चा । पट्टधार = चतुर है धार जिसकी । सोई हौं = वही मैं । साका करना = स्थायी कीर्ति प्राप्त करना । छोटो = बालक । कौसिक = विश्वामित्र ।

21. मख =यज्ञ । बिबुधस = इंद्र । अद्य =पाप । लोचन = अतिथि । भये = दर्शन दिये हैं ।

22. लायक है = लायक थे, सामर्थ्यवान थे । धनु सायक = धनुष बाण । सौंपि = देकर ।

अयोध्याकांड :

1. कीर = तोता, सुग्गा । कागर = पंख । उप्पम = उपमा । मगवास = मार्गवास । औध=अवध । रूख = वृक्ष । बटाऊ = बटोही । नाई =(न्याय) तरह ।

2. कागर कीर ज्यो = सुग्गे के पंखों के समान । सगाई =संबंध । दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई = मानों दो दिन अयोध्या में पहुनाई करते थे ।

सौति = सपत्नी । सोई = पालन किया है । मतेई =विमाता । बाम विधि = दुर्दैव । सिरि सुमन सम = अत्यन्त कोमल । टेई है = तीक्ष्ण की है ।

4. जीजी = दीदी । कि = क्या । जाई = पैदा हुई । सुधागेह = चन्द्रमा ।

5. नाम = रामनाम । खल कोटि = करोड़ों पापी । बूड़त = डूबत । काढ़े = निकाले । तटिनी = नदी । स्वै =(सोई) वही । करारे = कगारे (ऊँचे तट)

6. थोरिक = थोड़ी ही । अहै = है । लौं = तक । परसे = स्पर्श करने से । तरनी = नाव । घरनी = पत्नी । क्यों = कैसे । लरिका = बाल-बच्चे । बरु =भले ही ।

7. रावरे = आपके । बन - जल । बन-बहन = नाव । जलखाई रहा है = जल में निरंतर रहने से और कोमल हो गई है । पावन = पवित्र । पखारि = धोकर । बैन = बचन । हँसे हहा है = ठठा कर हँस पड़े ।

8. पात = पत्तल । सहरी = सिधरी मछली (एक विशेष मछली) । बारे-बारे = छोटे-छोटे । वित्तहीन = निर्धन । घरनी पत्नी । सौं = शपथ । बात न बढ़ाइ हौं = निरर्थ बात नहीं करुंगा ।

9. पुनीत = पवित्र । बारि = जल । पुरारि = शिव । प्पिथ गामिनी = गंगाजी । देह भरि = जीवन भर । भौनो सो = द्विरामगनबधू की तरह, अर्थात् नवीन और पवित्र मान कर । पठावनी कै = पार उतार कर ।

10. प्रभुरुख = रामचन्द्रजी कही स्वीकृति । कठौता = काष्ठ पात्र । आनि = लाकर । टेरि-टेरि = उच्च स्वर से । असपानी = निश्छल । राघौ =राघव । तन = तरफ , ओर ।

11. निकसी = निकली । मग = रास्ता । भरि भाल = पूरे मस्तक पर । जलकी कनी = पसीने की बूंदें । वै = दोनों । केतिक = कितनी (दूर) । कित हवै = कहाँ पर । चारु = सुन्दर । च्वै चली = बहने लगीं (अश्रुपात) ।

12. परिखौ = बाट देखो । घरीक = घड़ी एक, कुछ देर तक । पसेऊ = पसीना । भुभुरि = गरम धूलि । डाढ़े = जले हुए । नाह =पति ।

13. नौ द्रुम=नये पेड़ । डार = डाल, शाखा । बिकटी=टेढ़ी । भ्रुकुटि=भौंह । बड़री = बड़ी-बड़ी । अनमोल = अमूल्य । श्रम सीकर = पसीने की बून्दे । राशि = ढेर । तारक मै = तारक मय ।

14 . जलज - नयन = कमल नेत्र । उदित = प्रकट, प्रकाशित । उदार = प्रशस्त, अति बड़े । सिलीमुख = बाण । सरासन = धनुष । निषंग = तरकश । तिलोक =त्रिलोक । चितेरे =चित्र । चित्रिसार = चित्रशाला ।

15. अनंग = कामदेव । विसिखासन = धनुष । बनाइ = खूब अच्छी तरह । दिसिनाथ = चन्द्रमा । पाथ = जल । पाथनाथ = समुद्र । पाथनाथ नंदिनी = लक्ष्मी ।

16. बदन = मुख । सरसीरुह = कमल । प्रसून = फूल । अंसनि = कंधे पर । सुचि = पवित्र। सर - शर, वाण । तून = तरकश, तूणीर । लूटक पयनि के = वस्त्रों की शोभा को लूटने या हरनेवाले । उबटि कै = उबटन द्वारा मैल निकालकर । बरूथ = समूह । बर न (वर्ण) = रंग, घटनि के, श्याम सजल बादलों की घटाओं का ।

17.तून =तूणीर , तरकश । निधान = आगार । सहज = स्वाभाविक । दामिनी = विद्युत । बरन = रंग ।

18. बनिता = स्त्री । बनी = सुशोभित । मग = मार्ग । जोग = योग्य । बिथकीं = छक गयीं, तृप्त हो गयीं । माहन = मोहित करने वाले । अनूप = अनुपम ।

19. जिति = जीत लिया है । मैन = मदन । निषंग = तरकष । कमान = धनुष । बिधुबैनी = चन्द्रमुखी । रंचक = थोड़ा । पयादेहि = पैदल ।

20. अजानि = अज्ञानी, मूर्ख । पबि = बज्र । पाहन = पाषाण । काज - अकाज = भला - बुरा । कान कियो है = सही मान लिया । किमिकै = कैसे (किस हृदय से) ।

21. सुठि = सुन्दर । सुभाय = स्वभावत: । त्यों = ओर, तन ।

22. बैन = वचन । सयानी = चतुर । मनोज = कामदेव । बाहु = लाभ । बिगसीं = खिली । उदैक = उदय ।

।23. सजनी = सखी । रजनी = रात को । पोच = बुरा । कल =सुन्दर । श्रवण = मधुर । पै = तो । हिये कहि = हअदय मद्य, हृदय में । पलकैं लगी = पलकें बंद हो गई ।

24. कलेवर = शरीर । राजत = शोभित होते हैं । सोन = लाल । तिन = उन्होंने ।

25. विलोचन = नेत्र । मनोज - सरासन सी = कामदेव के धनुष के समान ।

26. चितै = देखकर । पसेउ = पसीना । लोल = चंचल । तृन तोरे(मुहावरे) = न्योछावर होना । कुरंग = हरिण । धनु सों सर जोरे = धनुष पर बाण संधान किए हुए ।

27. चारिक = चार । पानि = हाथ । सायक = वाण । मृगया -= शिकार । सिलीमुख = वाण । पंच = पांच ।

28. उदासी = दु:ख-सुख में एक से । ये = हुए । ह्वैहैं = हो जायेंगी । सिला = पत्थर । परसे = स्पर्श करने से । पद -मंजुल -कंज = सुन्दर कमल के समान चरण । किन्हीं भली = अच्छा किया ।

3.10 अभ्यास प्रश्न :

❋ दीर्घ उत्तर मूलक प्रश्न :

1) 'कवितावली' के आधार पर प्रमाणित कीजिए कि तुलसी एक लोकमंगलाकांक्षी भक्त हैं ।

2) कवितावली के काव्यत्व पर प्रकाश डालिए ।

3) कवितावली के भावपक्ष पर विचार कीजिए ।

4) तुलसी का व्यक्तित्व जैसा कवितावली में स्पष्ट है वैसा अन्यत्र नहीं - प्रमाणित कीजिए ।

5) कवितावली के कला-पक्ष को स्पष्ट कीजिए ।

❋ संक्षिप्त आलोचनात्मक प्रश्न :

निम्नलिखित पर संक्षिप्त यिप्पणी लिखिए :

1) तुलसी की भाषा

2) कवितावली का प्रतिपाद्य

3) कवितावली में कलिवर्णन

4) कवितावली में तुलसी के दार्शनिक विचार ।

5) पठित अंशों के आधार पर तुलसी के विचारों को स्पष्ट कीजिए ।

3.10 सप्रसंग व्याख्या कीजिए ।

1) पग नूपुर ..... कौन जिए ।

2) डिगति ..... दल्यौ ।

3) काल कराल ..... सिधाए ।

4) सांवरे गोरे ..... सकुचात हियो है ।

5) पद कोमल ..... सिधाए ।

3.11 संदर्भ ग्रंथ :

1) कवितावली - गीता प्रेस, गोरखपुर

2) तुलसी ग्रंथावली - आ. रामचन्द्र शुक्ल ।

3) तुलसी दास - डॉ. माताप्रसाद गुप्त ।

4) तुलसीदास - चन्द्रबली पाण्डेय ।

***